अध्याय-पाँच

नारी जीवन यथार्थ

अध्याय-पाँच
नारी जीवन यथार्थ

पौराणिक काल से ही नारी पूजनीय एवं सम्मानित है। "सृष्टि की संरचना के समय से ही नारी स्वर्गिक सुषमा से मंडित तथा अपूर्व गौरव से गौरवान्वित सुकुमारता, मधुरता, विनम्रता, दया, माया, ममता एवं स्नेह की आगार, त्याग एवं समर्पणशीलता की प्रतिमूर्ति बनकर समाज की सृष्टा रही है।"[1] नारी शक्तितत्व है, सत्य की ठोस प्रतिमा है, सुन्दरम् की दीपशिखा है तथा विश्वम् की मंगल चेतना से अनुप्राणित प्रकाशपुंज भी है।

आधुनिक समाज में नारी की स्थिती में बदलाव आया है। वह आज शोषित, उत्पीडित व पुरुषवर्चस्वता के अधीन में तडपती रही है। समाज एवं परिवार में उसको कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। राजेन्द्र यादव ने नारी की इस अराजकता पर नज़र रखकर लिखा है - "स्त्री अपनी बौद्धिक या अन्य उपलब्धियों के लिए जितनी हायतौबा मचाती रहे, पुरुष की जिद है कि साम, दाम, दण्ड, भेद से वह उसे कमर, कूल्हे, नितम्ब, छातियों से ऊपर नहीं उठने देगा।"[2] इसप्रकार स्त्री का जीवन अभिशप्त एवं शोषित बना रहा है।

हिन्दी लेखिकाओं ने नारीजीवन के कटु यथार्थ को अपनी लेखनी से साकार किया है। प्रतिस्पर्धा, अनास्था, मूल्यहीनता के युग में घुटन, कुण्ठा, निराशा, उत्पीडन एवं संत्रास से दबी हुई नारी मानसिकता का यथार्थरूप अनुभूतसत्य के आधार पर खींच लेने में समकालीन महिला लेखिकाएँ अग्रणी हैं। "महिला लेखिकाओं ने नारी जीवन और उससे संबन्धित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का न केवल सामान्य निरूपण किया है, अपितु उनके संबन्ध में जीवन्त निष्कर्ष और युग सापेक्ष निदान भी प्रस्तुत किए है।"[3] वास्तव में नारी जीवन की चुनौतियों के साथ उनका युगसापेक्ष निदान प्रस्तुत करना प्रगतिशील भावनाओं से संपृक्त नवीन भावबोध है जो सर्वाधिक ईमानदारी एवं विस्तार के साथ महिला उपन्यास लेखन में दृष्टव्य है। आगे नारी जीवन के विविध स्तरीय यथार्थ का चित्रण है।

5.1 पुरुष वर्चस्वता के अधीन तडपती नारी

नारी और पुरुष का संबन्ध शाश्वत और प्राकृतिक है। दोनों आपस में पूरक है। इन्हीं केन्द्रस्थ पात्रों के योगदान से ही पारिवारिक और सामाजिक संरचना कायम रहती है। लेकिन समाज स्थापना में पुरुष अपने वर्चस्व का निर्माण बहुत पहले से ही करता आया है। उसने नारी के लिए नैतिकता का दूसरा मानदण्ड बनाकर, उसकी सीमारेखा सिर्फ घर की दहलीज तक खींचकर, उसके अधिकारों का हनन किया। नारी ने भी विवशतावश से इसे अपनी नियति मान ली। किन्तु आज शिक्षा तथा पश्चिमी जीवन पद्धती के प्रभाव से आत्मनिर्भर भारतीय नारी बहुत हद तक अपने लिए स्वतंत्रता का वातावरण स्वयं चुन रही है। समकालीन महिला उपन्यासकारों ने इन स्थितियों को यथार्थवादी रंग देकर उभारा है।

मैत्रेयी पुष्पा के 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में पुरुषवर्चस्वता द्वारा नारी के लिए खींची गई लक्ष्मण रेखा दृष्टव्य है। "इनको पता नहीं कि विवाह के बाद पति का पत्नी पर कैसा कब्जा होता है? क्या इनकी मरजी बगैर इनके घर की औरतें के पक्ष में नहीं खपाते, बल्कि उसको अपनी तरक्की का साधन बनाकर आगे बढ़ जाते हैं।"[4] पुरुष ने आज तक जो उपलब्धि हासिल की है, उसकी बुनियाद में नारी पीयूष स्रोत सी बहा करती है, किन्तु इससे परिचित होकर भी नारी के अधिकारों का हनन करना कितना धोखा है। समाज में पुरुष व्यवहार को कोई अंकुश नहीं किन्तु वैसे ही आचरण के लिए नारी को प्रताडित किया जाता है। यहाँ कस्तूरी कहती है - "दुश्चरित्र स्त्रियों की दुर्दशा देखी है और सुनी भी है। उसका सिर मुँडा दिया जाता है। मुँह पर कालिख पोतकर गाँव में घुमाया जाता है।"[5]

समकालीन पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष अपनी 'अहं' की भावना से नारी को दबाने का अथक परिश्रम करता है। यदि पत्नी कामकाजी एवं उच्चपदस्थ है तो उनका 'अहं' अधिक धधक उठता है। 'शाल्मली' में शाल्मली अपने अथक परिश्रम से शिक्षा में ऊँची दर्जा पाकर ऐ.ए.एस. ऑफसर बन गयी। पति नरेश ने उससे अधिक जुगुप्स होकर उसे प्रताडित करना शुरू किया - "मैं ने जो कह दिया, उसका पालन तुमको करना है, बस पति का अधिकार केवल धर्मग्रन्थों में नहीं लिखा, तुम्हारे संविधान में उस सरकार द्वारा लिखा गया है, जिसकी चाकरी करती हो तुम।"[6] नरेश की दृष्टि में नारी केवल भोग की वस्तु है, यही उसकी पहचान है। प्रस्तुत उपन्यास में पति से तनाव भोगनेवाली सरोज से शाल्मली बताती है - "तुम्हारे सामने समस्या केवल पति

से निपटने और उससे मुक्त होने की है, मगर मेरी नज़र में सही नारीमुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुमसे टकराएगा। चाहे वह सब्जीवाला हो या तुम्हारा बॉस अखबारवाला हो या तुम्हारा पति। संक्षेप में होगा वह पुरुष ही। पति से मुक्ति पाकर क्या इनसे भी मुक्ति पा लोगी? या सबको नकारती चली जाओगी।"[7] यहाँ पुरुष वर्चस्वता का सटीक चित्रण मिल सकता है।

प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' में नरेन्द्र अपनी पत्नी के व्यवसाय से विरोधी है। उन्होंने प्रिया को धमकी भी दी - "ज़्यादा वक्त झक करने पर व्यापार भी बन्द करना दूँगा, क्या लगता है? ज़रा-सा रिज़र्वबैंक की चिट्ठी भर की देर है।"[8] प्रिया को अपने परिवार एवं बेटे को नष्ट होने का भ्रम असहनीय था। लेकिन पति ने बताया कि "फिर सुन लो यहाँ मत आना। आओगी तो मैं धक्के देकर बाहर निकलवा दूँगा।"[9] उसने प्रिया को उस घर से फेंक दिया। उषा कीर्तिराणा इस संबन्ध में बताती है - "अब उसे न पति की ज़रूरत है, न बेटे की। ईमानदार पत्नी और अच्छी माँ बनकर वह जान गई थी कि वफादारी, प्यार, समर्पण ये शाब्दिक भ्रम हैं। इन शब्दों के जाल में स्त्री युगों से अपनी कुर्बानी देती रही है। बडे घर की बहु-बेटी होने के बावजूद वह दर्द-पीडा के खौलते पानी में उबलती रही है।"[10] घमंडपूर्ण आज्ञा के बल पर पुरुष पितृ सत्तात्मकता का साजिश दिलाता है।

कृष्णा अग्निहोत्री के 'बात एक औरत की' उपन्यास में 'कनु' का पति एक बहशी जानवर के समान उसे सारी रात बाहों में थामे हुए घायल करता रहता है। लेखिका ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि "मेरी नायिका महज औरत है। वह औरत जो संपूर्ण समय के साथ लडाई लड़ना चाहती है, जिसके भीतर मनोवेग है, संस्कार अपनी ओर खींचते हैं, अनुभव अपनी ओर, हर चौराहे पर खड़ा एक पुरुष उसमें केवल जिस्म की औरत ढूँढता है।"[12] पुरुष वर्चस्वता के संबन्ध में कृष्णा अग्निहोत्री 'कुमारिकाएँ' उपन्यास में यों लिखती है - "क्या स्त्री का अस्तित्व पति के साथ खूँटे से बन्धे हुए ही रह सकता है। उसका अस्तित्व कितनी यातनाओं का गरल पीने के बाद भी पति के आसपास ही घूमता है। लेकिन जब जागरूक नारी पति की अमानुषिक यातनाओं से घबराकर, श्रृंखलाओं की बेड़ियों को तोड़कर तलाक लेकर अलग रहने का जोखिम भरा प्रयास करती है तो समाज के ठेकेदार..... सांत्वना देने की जगह उसे सन्देह की दृष्टी से देखते हैं तथा लांछित करते हैं। जैसे परगामी तथा दुराचारी पति से छुटकारा पाना नारी की नियति है। पुरुष प्रधान समाज की ऐसी अवहेलनाओं और यातनाओं को भोगती है - 'कुमारिकाएँ' उपन्यास की परित्यक्ता शुचिता।"[13]

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में व्यक्त पुरुष वर्चस्वता के संबन्ध में डॉ. मधुसन्धु का मत है कि - "मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' एक विद्रोह गाथा है, उस गाँव अतरपुर की, जहाँ औरतें पुरुषीय अहंशील और सतीत्व की रक्षा के नाम पर बलि चढ़ा दी जाती है। सीता की तरह भूमिप्रवेश करती हैं। इस गाँव के इतिहास में ऐसी अनेक दास्तानें दर्ज है। रुक्मिणी रस्सी के फंदे से झूल जाती है। रामदेई कुएँ में कूद जाती है। नारायणी करबन नदी में समाधि लेती है। चन्दना ससुराल के रास्ते में ही पति के द्वारा मौत के धार उतार दी जाती है। रानीमेता को देश निकाला और मृत्युदण्ड एक साथ मिलते हैं। हर हालत में पुरुष की जात बस अपनी ही सगी होती है।"[14] यहाँ लेखिका ने स्त्री-पुरुष संबन्धों को यों व्याख्यायित किया है - "पत्नी का एकाधिकार तो हर पुरुष को मिलता है विरासत में। उस अधिकार को खोना ऐसा है जैसे दादा लाई संपत्ति, जर-जमीन खो देना।"[15] यहाँ पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था का ठीक चित्रण ही मिलता है।

मालती जोशी के 'पाषाणयुग' में सोलह वर्षीय लड़की को बूढे प्रोफसर ने अपनी वासनापूर्ती के लिए शादी की। "वह तो पति की धूर्तता की शिकार हुई है जिसने उसे राजकुमारी की तरह वश में कर लिया। दिनभर तो वह बेचारी पत्थर का मूरत बनी रही और रात होते ही पति उसे अपनी भोग लिप्सा का साधन बनाकर उसका भोग करता है।"[16] उसके जीवन की यही दुखद कहानी है और यही उसकी अस्मिता है। यहाँ पुरुषवर्चस्वता ही बलवत्ती हो उठती है।

पुरुष अपने पौरुष के बल पर नारी को नीचा दिखाना चाहता है। चित्रा मुद्गल के 'एक ज़मीन अपनी' में अंकिता का पति उसे केवल एक मामूली औरत का स्थान देकर कहता है - "तुम मामूली औरत, क्या है तुममें? सिवानराशी देह के? और सिर्फ तराशे शरीर के साथ नहीं रह सकता... पुरुष इसके आगे भी कुछ चाहिए, होता है। महज शरीर पाने के लिए उसे घर में औरतपालन की ज़रूरत नहीं होती।"[17] पुरुष वर्चस्वता पर इशारा देकर 'आँखों की दहलीज' में तालिया से डॉ. राशि कहती है - "तुम नहीं समझोगी तालिया, हम इतना पढ़-लिखकर भी 14वीं सदी में जी रहे हैं। ...तुम्हीं बताओ, कहाँ बढ़े? हमने कहाँ तरक्की की है? आज भी हम पुराने बन्धनों में नहीं बँधे हैं?[18]

नासिराशर्मा 'ठीकरे की मँगनी' में महरूख के माध्यम से पुरुषवर्चस्वता की तह में चल रहे नारीशोषण की ओर इशारा करती है। महरुख की सगाई रफत से हो गयी। रफत अमेरिका में पढाई के लिए गया, और उसने वहाँ से एक विदेशी स्त्री से शादी भी की। लौट आने पर उसने

अपने व्यवहार को 'वे ऑफ लाइफ' कहकर बिना संकोच के महरुख से शादी करने का प्रस्ताव रखा तो महरुख ने उस पुरुष वर्चस्विता को इनकार किया। यहाँ पुरुषों की वर्चस्वता पर प्रकाश डालकर छोटी चाची घर की औरतों से कहती है, "मर्द सौ गलती करे, उन्हें माफी, औरत एक करे तो उसके लिए पिस्तौल तैयार है। कभी सुना है कि कोई मर्द औरत के नाम पर बैठा हो मगर औरत एक मर्द के नाम पर ज़िन्दगी तज देती है।" बडी चाची उत्तर में कहती है, "यह तो भाभी मर्दों की दुनिया है, वह सफेद करें या स्याह, उनसे कौन पूछता है? मज़ाजी खुदा जो ठहरे।"[19] यहाँ स्पष्ट है कि पुरुष किसी न किसी प्रकार की गलतियाँ करने पर भी समाज उनको दोषी न मानता है। लेकिन यदि स्त्री ऐसा करें तो समाज उसपर पत्थर फेंकेगा। इसपर रचना की राय है - "औरत जब अनुराग से भरती है तो अपना सबकुछ दाव पर लगा देती है, मगर मर्द ऐसा नहीं करता है। उसके काम और कर्म के दो अलग-अलग क्षेत्र हैं, यहाँ तक कि वह प्यार भले ही किसी से करता हो तो भी वह परस्त्री के प्रति अपना आकर्षण कम नहीं कर पाता, बल्कि अवसर मिलने पर सहवास से उपजा सुख न तो उसे पाप मालूम होता है और न मानसिक क्लेश देता है। जबकि औरत कुण्ठित होकर आत्महत्या या आत्म प्रताडना से मर-मर जाती है।"[20] पुरुष वर्चस्वता के बदले समन्वय या समभावना की भविष्यवाणी ने महरुख के मन को अधिक मज़बूत कर दिया। उसने रचना से बताया कि "एक दिन ऐसा भी आएगा जब औरत का भी काम, कर्मक्षेत्र मर्द की तरह ही अलग- अलग होगा, तब उसके लिए मर्द ज़िन्दगी की न घुरी होगी, न खिड़की, जिससे वह दुनिया देखती है, तब वह इन्सान की तरह मर्द की दोस्त होगी।"[21]

शादी के बाद स्वभाव में बदलाव आनेवाले पुरुष भी हैं। मालती जोशी के 'सहचारिणी' का योगेश नीलू से शादी करते समय उसे काम या संपत्ती नहीं थी। लेकिन बाद में नौकरी एवं संपत्ती प्राप्त करने पर उसका स्वभाव भी बदल गया। उसके अनुसार - "माना कि वही घर स्त्री का स्वर्ग है, लेकिन उसके लिए कोई आत्मसम्मान तो दाँव पर नहीं लगा देता और पति जब स्वयं कहे कि वह ऊब गया है, मुक्ति चाहता है तब भी क्या उसकी देहरी पकड़कर बैठना श्रेयस्कर है।"[22]

पुरुषसत्तात्मक समाज में समाज के न्याय एवं अन्याय केवल पुरुषों के लिए है। मणिकामोहिनी ने 'पारु ने कहा था' में सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य करके बताया है कि पुरुष चाहे तीन-चार विवाह कर सकता है पर पत्नी पति के मरने के पश्चात क्यों विवाह नहीं कर

सकती। उपन्यास के पति में संस्कारगत सामन्तवादी पुरुष का स्वर बोलता है। स्त्री-पुरुष के संबन्ध में उनका एकांगी मन पत्नी के विचारों की दीवारों को ढहा देता था। "पारु ने कहा था' में नारी जीवन की विडंबना को व्यक्त किया गया है जो दुःख का अवतार है, दुःख को भोगना ही उसकी नियति है।"[23]

'कोहरे' में दीप्ती खण्डेलवाल ने पुरुषवर्चस्वता की ओर संकेत करते हुए कहा है कि "प्रणय, परिणय, मातृत्व के नैसर्गिक रूप से नारी बन्धनों में ही बँधती जाती है, प्रकृति के, पुरुष के, मन के बन्धनों में और पुरुष बन्धकर भी नहीं बंधता। ....हाँ नारी को बाँध रखना चाहता है, चाहे लोहपाश हो, या रेशम का"[24] इसके संबन्ध में कृष्णा सोबती के 'समय सरगम' उपन्यास में एक स्वामी का मत इसप्रकार है - "पर ध्यान रहे, स्त्री शरीर में एक घोडा बँधा रहता है। भक्तजनों उसे काबू में रखना ज़रूरी है। असल बात तो यह कि स्त्री देह है। इसलिए उस मार्मिक अनुभूतियाँ बिछौने में मिलती हैं। विचार उसका क्षेत्र नहीं। इसलिए वह आत्मदया से ग्रस्त है।"[25] यहाँ स्वामी नारी मन को दोषी मानकर उसे नियंत्रण में रखने का आह्वान देता है, किन्तु पुरुष को नहीं।

पुरुषवर्चस्वता की धारणा पर टूटती नारी की दारुण व्यथा 'कोरजा' में मेहरुन्निसा परवेज़ ने प्रस्तुत की है - "मर्द कभी जूठा खाना पसन्द नहीं करता। औरत तो हमेशा ही जूठा खाने की आदी होती है। हिन्दू धर्म में देखो ना, पति की जूठी थाली में खाना आदर्श माना जाता है। औरत तो जूठा खाने की आदी होती है चाहे खाना हो या शारीरिक संबन्ध हो।"[26] यहाँ लेखिका ने एल्मा के हताश जीवन को व्यक्त किया है।

पत्नी यदि गरीब परिवार की हो तो पति एवं घरवाले उससे उपेक्षापूर्ण व्यवहार करेंगे। पुरुष अपनी घमण्डता भी दिखायेंगे। कुसुमअंसल के 'एक और पंचवटी' में यतीन अमीर है जिसने मध्यवर्गीय नारी साधवी से शादी की लेकिन शादी के बाद दोनों के बीच झगडा हुई क्योंकि यतीन संपन्न परिवार का लड़का है। उसने साधवी से बताया, "मैनर्स तो आते ही नहीं.... गरीब घर की बेवकूफ लड़की हो न, तुम क्या जाने बडी-बडी बिज़नेसों में लोगों से किस प्रकार काम लिया जाता है.... ये गली मोहल्लेवाली सिखावट मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं....इतने दिन से बडे घर में रह रही हो... यहाँ की मान-मर्यादा जैसा कुछ नहीं सीखा तुमने.... शर्म आती है मुझे तुम पर....।"[27] जब वह विरोध करती है तो पति उसे प्रताडित करने की धमकी देने लगता है - "मेरा जैसे मन आयेगा मैं वैसे ही रखूँगा अपनी बीवी को मुझे किसी का मशवरा नहीं चाहिए। सुन लो तुम्हें अगर ऐसे

ही रहना है, तो रहो, नहीं तो तुम्हारी इच्छा, मैं यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगा.... समझी तुम.... और अब कभी ये बात उठाना भी मत.... नहीं तो सारे दान्त तोड़ दूँगा।"[28]

पुरुषवर्चस्वता के कारण परिवार कैसे बिगड जाता है और वहाँ के बच्चों की ज़िन्दगी कैसी होती है इसका सटीक चित्रण शशिप्रभा शास्त्री के 'परछाइयों के पीछे' उपन्यास में देख सकते हैं। सुमित्रा एक कामकाजी निरीह युवती है। उसके पति महीपाल को उसके प्रति शक होने के कारण उसने उसे नौकरी से छुडवाकर एक प्राइवट कंपनी में शामिल किया। उसने नीना को ट्यूटर के रूप में रखकर उससे अवैद्य संबन्ध भी रखा। दोनों बेटियों को उसने सुमित्रा से छीन लेकर अपने पास रख दिया। एक लड़का पैदा होने पर सुमित्रा को डर लगा कि 'कंस' की तरह वह इस बच्चे को भी छीन जाएँ। परन्तु खबर सुनकर उसने बताया कि "यह मेरा नहीं है।" सुमित्रा के हृदय का चीत्कार लेखिका ने यों प्रकट किया है - "तेरा नहीं है तो और किसका है मुत्ते, हर बच्चे की बारी में इसने यही रंग दिखाए हैं और तिस पर तुरी यह कि पहले नकारकर दुरदराया और फिर छल-बल से उसी नकारे हुए को दबोचकर बैठ गया। हे ईश्वर, ऐसे पापी का क्या कोई इलाज नहीं है? परमात्मा, तू उसके ऊपर कहर वरषा कर, जो तेरे राज्य में इतना जुल्म दाता है।"[29] शशिप्रभा शास्त्री के अनुसार "पुरुष कितने क्रूर होते हैं। वे अपना द्वेष स्त्रियों पर डालकर निर्द्वन्द्व हो जाते हैं। मर्दों के लिए औरत सिर्फ उर्वर ज़मीन मात्र है जो उनके बीज को धारण करने के लिए ही बनी है। राम के काल से ही यही रीति चली आई है कि पुरुष किसी न किसी ओर से नारी को त्रास दे, उसे निष्कासित करे और खुद सिंहासन पर सजा - धजा न्यायमूर्ति बना बैठा रहे - सर्वपूजित - निश्चिन्त निर्द्वन्द्व।"[30]

'कठगुलाब' में मृदुलागर्ग जी स्मिता, मरियान, नर्मदा एवं असीमा के माध्यम से पुरुषवर्चस्वता के पाश में बन्दी नारी का जीवन्तचित्र देती है। स्मिता अपने जीजा जी से शोषित होती है तो मरियान अपने पति से। डॉ. मधुसन्धु के अनुसार "'कठगुलाब' का यथार्थ नंगे जख्म पर उँगलियाँ रखनेवाला यथार्थ है। दर्पण के आमने-सामने खडा करनेवाला यथार्थ है। तिलमिलानेवाले कटु सत्य है। यहाँ नारीवाद का समर्थन होते हुए भी अन्धानुकरण नहीं।"[31] मृदुला जी के 'मैं और मैं' उपन्यास में माधवी साहित्यिक लेखिका है। उसका शोषण करने के लिए एवं उससे पैसा चुराने के लिए झूठी प्रशंसा देकर कौशलकुमार उसके पास आया। यहाँ नारी शोषण पर दृष्टि डालकर मृदुलाजी बताती है, "कमज़ोर से कमज़ोर, गरीब, से गरीब निकम्मे से निकम्मे आदमी के पास एक

जायदाद होती है जिसपर वह हुकूमत कर सकता है उसकी बीबी"[32] माधवी अपनी इच्छाएँ, महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण करने के लिए प्रयास करती है तो वहाँ भी उसका शोषण चलता है।

'दहकन के पार' उपन्यास में असलम अविवाहित मातृत्व के कारण शोषित होती है। वह समाज के सामने अपने प्रेम के पौधे को पाना चाहती है किन्तु प्रेमी के छोड़ने से पराजित हो उठती है। उसके सामने अनेक संकट एवं उलझनें आती हैं और वह बिखरने लगती है - "पर मैं ऐसी औरत हूँ जो अपना सच्चा दुःख बताएगी भी तो मुसीबत में पडेगी। और 'हमदर्दी' की जगह दर्द का मज़ा लेनेवाली। 'सैडिस्टिक मुस्कुराहट' ही पल्ले पड़ेगी। अपने ढंग से जीनेवाली स्त्री की मुसीबतों में से यह भी एक मुसीबत है।... ओ नया - वह दे भी दूँ पर ओफ्फ। वातावरण, स्थितियाँ, परिवेश ये सब नये कैसे दूँ? मेरा रोआँ-रोआँ धुंधक उठता है विवशता से।"[33] यहाँ पुरुष के कारण पुरुष को नष्ट होने को कुछ नहीं किन्तु नारी को सब कुछ नष्ट हो जाता है।

पारिवारिक दायित्व को झेलनेवाली नारी पुरुष की घमण्डता का शिकार बनकर पारिवारिक घुटन का अनुभव करती है। 'अभिषेक' उपन्यास में वेणु एक बडे घर की बहु है। उसका पति संपत्ति के लालच में उसके मातृत्व का सौदा करता है। उनके विचार में - "आज की औरत न तो अतीत की स्वच्छन्दता का आलिंगन करती है। उससे बाहर नौकरी करने की आशा भी की जाती है और उसे घर पर पति व घरवालों के आदेश की गुलामी भी भोगनी पड़ती है, ऐसी प्रगति में जीना आज की नारी की नियती है। स्त्री माँ एवं पत्नी होने के नाते उसे सभी घुटन एवं संत्रास को भोगना पड़ता है। नारी हमेशा यह एहसास करती है कि परिवार उसकी मज़बूरी है क्योंकि प्रकृति ने उसे जननी बनायी है।"[34]

मालती जोशी के 'गोपनीय' उपन्यास की माँ जी कहती है कि "ऐसा ही करना पड़ता है, बिटिया, औरत का जन्म ही इसलिए है। सारी उम्र ससुराल और पीहर की लाज ढँकते ही बीतती है।"[35] राजीसेठ के उपन्यास 'निष्कवच' की ललना का कहना है - "वह हँसी हँसने के लिए बिटवा तुम्हें लड़की होना पडेगा। लड़की जो हमेशा नंगी होती है। इतनी नंगी कि उसे ढेरों कपड़े चढ़ाने पड़ते हैं।"[36] यही पुरुषमेधावी समाज में नारी की नियति है।

'दिलोदानिश' में बउआजी के द्वारा कृष्णासोबती ने कहलवाया है कि - "हमसे पूछो तो मर्द को गुमराह करनेवाला फकत हुस्न और जवानी नहीं, उसकी कमाई है जो उसे मख्तारी देती

है। हमसे पूछो तो घर की बहु ज़िन्दगी भर या मर्द की सुनेगी या बेटों की। धर्मशास्त्र भी तो यही कहते हैं।"[37] स्त्री होने के नाते ही नारी यौनशोषण की शिकार हो जाती है। स्त्री के पक्ष में यह शोषण की भूमिका है तो पुरुष के पक्ष में स्वेच्छाचारिता है। राजीसेठ 'निष्कवच' में कहती है - "मैं जानता हूँ, मार्था मुझे वापस पाने के लिए ऐसा करती है। यह तो कहो मार्था कभी भीतर तक तन्मय हुई तो जान लेती है, नहीं तो वहाँ देह के आदान-प्रदान से ही काम चल जाता है।"[38] शय्या पर भी पुरुष वर्चस्वता की असहजता को सहज भाव से स्वीकार करना ही नारी की विवशता है।

'प्रतिध्वनियाँ' में नीलकान्त मेहता और अचला ने विवाह एक सौदे और समझौते के रूप में किया है। विवाह के पश्चात् नीलकान्त घर की परिचारिका को अपनी वासना का शिकार बनाकर उसे गर्भवती बनाता है। लेकिन जब पत्नी अचला अपने प्रेमी विनय का गर्भ धारण करती है तो कान्त आग-बबुला हो जाता है। पुरुष अपने पौरुष और अहं पर आघात सहन नहीं करता। "अपने समाज में पुरुष के लिए वासना के उन्माद भी क्षम्य रहे हैं, नारी के लिए प्यार की पूजा भी नहीं। यदि विवाह की वेदी पर स्त्री-पुरुष जीवन-भर के लिए परिणय-बन्धन में बँधते भी हैं, तो वह बन्धन पुरुष के लिए बहुत शिथिल होता है, स्त्री के लिए शिकंजे जैसा कठोर।.... आपने कभी नाजायज शिशु के पिता को नदी या तालाब में डूब मरते या गले में फाँसी का फन्दा लगाते देखा है.... यह विवशता तो नारी की ही होती है, प्रकृति की दी हुई, समाज की दी हुई।"[39]

नारी शोषण पर इशारा करके 'नीलिमासिंह' ने 'स्वीकार है मुझे' उपन्यास में बताया है कि पारिवारिक संरचना ऊपर से भले निर्दोष दिखाई दे, भीतर ही भीतर नारी के टैलन्ट को समाप्त करने का बहुत बडा षड्यंत्र है। उपन्यास की नायिका सोचती है कि "क्यों सारी पत्नियाँ मिलकर ऐसी यूनियन बनाएं जो हर सेवा का मूल्य तैयार करें, जैसे - खाना पकाने की फीस इतनी, कपडे धोने की इतनी और रात में तुम्हारे साथ सोने की इतनी।"[40] आज विवाह संस्था भी पुरुषवर्चस्वता के कारण खोखला बन जाती है।

रजनीगुप्त के 'कहीं कुछ और' उपन्यास में रचना ने रजत से प्रेमविवाह किया था। रचना कामकाजी नारी थी लेकिन पति उससे गुलाम या दासी सा व्यवहार करता था। इसलिए वह उस विवाह संस्था से मुक्त होना चाहती है।

पुरुष की पूँजीवादी संस्कृति को सूचित कर अनामिका 'अवान्तर कथा' में बताती है कि पुरुष की बराबरी की बात नाम-मात्र की है। बेटी के जन्म पर सांत्वना देनेवाले एक पत्र का

अनामिका ने उल्लेख किया है जिससे पुरुष की मानसिकता का पता चलता है - "समझता हूँ कि कन्यादान के पुण्य के लिए एक कन्या भी चाहिए थी तुम्हें पर कलजुगा ऐसा घोर चढ़ा है बेटा सोलह-अठारह साल तक पराए धन की साज-संभाल कठिन जान पड़े है - एक जमाना खराब, दूसरे पढ़ाई का चस्का ऐसा कि छोरियों को खटाखट बाहर-भीतर करने से रोकना मुश्किल खैर, तब की तब देखी जाएगी, अभी से क्या हिम्मत हारना।"[41] पुरुष मानसिकता का पर्दाफाश यहाँ हम देख सकते हैं।

5.2 अकेलापन को झेलनेवाली नारी

पौराणिककाल से ही अकेलापन की समस्या कायम रही है। पौराणिककाल में ऋषि, मुनि ने स्वान्त सुख केलिए अकेलापन का पर्दा डाल दिया था। यह केवल आत्मसंतुष्टि एवं ईश्वरीय संतुष्टि के लिए था। हर युग में अकेलापन विभिन्न स्तर पर एवं विभिन्न रूपों में पाया जाता है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार - "अकेलापन का बोध भी बहुत पुराना है, मध्यकालीन है, शायद इससे भी पहले का है। उपनिषदों में भी इसे आँका जा सकता है। आज का अकेलापन मध्यकालीन या रोमांटिक अकेलापन से भिन्न कोटि का है। मध्यकालीन युग में यह आत्मिकस्तर पर है, रोमांटिक युग में वैयक्तिकस्तर पर और आधुनिक युग में यह स्थिति-नियति के स्तर पर है।"[42] समकालीन समाज में व्यक्ति सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं से परेशान है, परिणामस्वरूप अकेलापन, घुटन, आशंका, जड़ता, टूटन आदि भावों से भरकर सदा असंतुलित व्यवहार करने लगता है।

अणुपरिवारों की भरमार, दाम्पत्यसंबन्धों के तनाव, पारिवारिक शिथिलता एवं मानवीय संवेदनाओं का ह्रास आदि कई कारणों में अकेलापन पारिवारिक जीवन में अधिक देख सकते हैं। आज नारी किसी डर या झिझक के बिना अतिसम्मानित ढंग से जीवनयापन करती है। लेकिन कहीं-कहीं पर अकेलापन नारी की मज़बूरी बन जाता है। कृष्णा सोबती के 'ऐ लडकी' में अम्मू ने स्त्री जीवन के अकेलापन की तीक्ष्णता व्यक्त की है। अम्मू लड़की से बताती है कि वह स्वयं बेटा-बेटियाँ, पुत्र, पौत्र आदि पूर्ण परिवार के होने के बावजूद भी अकेली है। उसकी मान्यता है कि अकेलापन आत्मविश्वास को बढाता है क्योंकि वह प्रत्येक परिस्थिति का सामना स्वयं कर सकती है।

कृष्णासोबती के 'समयसरगम' की आरण्या जीवनभर अकेली रहती है। उसका जीवन अस्तित्ववाद के धरातल पर था परन्तु अन्त में वह अकेले जीने-मरने से डरने लगती है और कहीं न कहीं विधुर ईशान का सहारा ढूँढती है। ईशान आरण्या के अकेलापन को दूर करने के लिए उसके साथ जीने का आग्रह प्रकट करने पर भी आरण्या इस पर कबूल नहीं थी। आरण्या को अपने आसपास के संबन्धों के जाल में न होने से घुटन का अनुभव भी नहीं - "अकेलों के समुदाय की गिनती अब पहले से कहीं ज़्यादा है। इनकी अपनी ही कठिनाइयाँ और अपनी ही सहूलियते, अकेले-अकेलों की अपनी जीवनशैली है। करते रहते हैं स्वनिर्माण और आराम। परिवार का कोलाहल, शोर, तनाव, ऊँचनीच और तनातनी आसपास नहीं।"[43] यहाँ अविवाहित युवतियों के अकेलापन एवं जीवनचर्या का परिचय है।

'एक ज़मीन अपनी में' नीतू तो जीवन से इतनी व्यथित हो जाती है कि उसे अपना जीवन ही व्यर्थ लगने लगता है। बहुत सुन्दर होने, व्यवसाय में नाम कमाने, बहुत घूमने, फिर अपने बॉस से विवाह कर एक नन्ही बच्ची की माँ बनने के बावजूद वह अपने अकेलेपन से दूर नहीं हो पाती है और सदा के लिए नींद की गोलियाँ खाकर इस संसार से विदा हो जाती है। अपनी मृत्यु के बाद अंकिता के लिए वह जो पत्र छोड़ जाती है उससे उसका संत्रास प्रकट होता है। वह अंकिता को पत्र में लिखती है कि - "अपने भीतर अपने को तिल-तिल मरता महसूस करना कितनी असाध्य यंत्रणा है। मुझमें अब और साहस शेष नहीं रहा कि मैं और अधिक दिनों तक अपनी मौत की साक्षी हो सकूँ। चरम अकेलापन और कुण्ठा से मुक्त ही स्वयं को बहुत सम्हालने और सहेजने की कोशिश की लेकिन असफल रही।"[44] नारी मन की विवशता यहाँ व्यक्त की है।

'वणिक' उपन्यास की नलिनी मिश्रा एकाकी नारी जीवन व्यतीत करती है। पिता की मृत्यु के पश्चात बहन के प्रति अपने दायित्व को पूर्ण करती है। अकेलापन को झूमनेवाली वह नारी सभी की भलाई के लिए प्रयत्न करती है। इस रास्ते में उसे कई कठिनाइयों से जूझना पडा। शहर के बाहर बडी कोठी बनवाकर वह अच्छा जीवन व्यतीत करती है लेकिन अन्त में नारी के ही स्नेह द्वारा वह ठगी जाती है और उसे अपने प्राणों की आहूती तक देनी पड़ जाती है।

कभी-कभी नगरों में महिलाएँ अकेलापन को मिटाने के लिए क्लब में जाती हैं और अपनी कमी को छिपाकर दूसरों की कमी की ओर इशारा करके व्यंग्यपूर्ण बातें भी करती हैं। मजुलभगत के 'लेडीज़ क्लब' में श्रीमती चाटर्जी लेडीज़ क्लब की पुरानी सदस्या है। पति के

निधन के बाद वह अकेली हो गयी है। अब उसने क्लब छोड़कर समय तथा अकेलापन का लाभ उठाकर 'नवजीवन अनाथआश्रम' की संरक्षिका एवं संचालिका का कार्यभार चुन लिया। इस उपन्यास में संभ्रान्त, धनाढ्य महिलाओं का अकेलापन दूर करने की वजह से महानगर में कृत्रिम जीवन और उसमें उपजे, दंभ और अहंकार के झूठे प्रदर्शन का सत्यस्वरूप भी प्रस्तुत किया गया है।

अकेलापन की समस्या बम्बई जैसे महानगरों में अधिक महसूस होती है। यहाँ अकेली नारियों की दशा दर्दनाक है। ममता कालिया के उपन्यास 'लड़कियाँ' में पूजा ने अखबार देखकर ऐसा सोचा - "इतने बडे शहर की इतनी बडी इमारत में मेरा यूँ अकेले रहना ठीक नहीं। क्या पता कब क्या हो जाए। आए दिन चोरी, ठगी और बलात्कार की खबरे पढ़कर मन अलग दहल जाता।"[45] महानगर की जीवनशैली एवं सूनेपन की दशा यहाँ लेखिका ने व्यक्त की है।

महानगरीय जीवन में अलगाव की स्थिति अधिक दिखाई देती है। 'उम्र एक गलियारे की' उपन्यास में इसका वर्णन है - "उसका अपना शहर बडा नगर है, राजधानी है कैसा लगता है यहाँ पर, बरसों रहते हुए भी एकदम बेगानापन, किसी को किसी चीज़ से कोई लगाव गरज मतलब नहीं।"[46] कृष्णा सोबती के 'ज़िन्दगीनामा' में भी यह दर्शाया गया है कि महानगरीय परिवेश में जीनेवाले व्यक्ति को हर पल अलगाव एवं अजनबीपन की अनुभूति होती रहती है।

पारिवारिक जीवन में अकेलापन का शिकार होना सबसे बडी मुसीबत की बात है। 'निष्कवच' में राजीसेठ ने 'मीरा' के माध्यम से इस समस्या पर प्रकाश डाला है। निष्कवच के दो वृत्तान्त अपनी-अपनी ज़िन्दगी अपने शर्तों पर जीने के लिए बेचैन दो तरुणियों के वृत्तान्त हैं। 'मीरा' बचपन से ही अपने परिवार से अलग थी। माँ के प्रति उसके मन में अनादर की भावना थी। पढने के लिए उसे दूर मौसी के यहाँ भेजा रहा था। भाई के प्रति भी उसके मन में हीन भावना थी। इसलिए वह ज़िन्दगी भर अकेलापन की तड़प में जी रही थी। "कितना अजीब होता है न, इतनी बड़ी दुनिया में कुछ भी अपना न होता।"[47] यही उसकी शिकायत है।

विवाहित या अविवाहित स्त्री-पुरुष भी अलगाव और अकेलापन की त्रासदी से बच नहीं सकते हैं। कुसुम अंसल के 'अपनी-अपनी यात्रा' की माँ विहीन सुरेखा बचपन से ही कुण्ठाग्रस्त जीवन बिताती थी। सौतेली माँ की उपेक्षा से बचकर वह बुआ के पास रहती थी। उसका साँवला रंग उसके विवाह में बाधक बनता है। शिवकुमार कौशिक की सहायक वकील के रूप में वह काम

कर रही थी। शिव की पत्नी मंजरी उन दोनों को शंकालू दृष्टि से देखती थी। अकेलापन की व्यथा से पीडित होकर वह सोचती है, "अकेलापन और भी कितनों का है? क्या शिव अकेला नहीं है? विवाहित शिव, एक पुत्र का पिता, अकेला नहीं है? भिन्न भी तो है।"[48] अकेलापन की त्रासदी आज बढ़ती जा रही है।

प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' में प्रिया का जीवन बहुत दुःखपूर्ण था। पति उससे दूर हुआ। एकमात्र बच्चा भी दूर है। प्रिया अपने अकेलापन को सधैर्य स्वीकार करती हुई कहती है - "मेरा साथ मेरा अकेलापन है, यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ समझा रहा है। कैसे मैं ने अपने आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है। हूँ टूटी हूँ, बार-बार टूटी हूँ... पर कही तो चोट के निशान नहीं... दुनिया के पैरोंतले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई हूँ। अडतालीस की इस उम्र में एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ, जो ज़िन्दगी को झेल नहीं रही बल्कि हँसते हुए जी रही है, जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज है। दोस्ती का हाथ बढाकर जिसकी गर्म हथेलियाँ हर किसी को अपने करीब खींच लेती है।"[49] अकेलापन को दूर करने में प्रिया सफल ही रही है।

कुसुम अंसल का 'एक ओर पंचवटी' में साधवी के अकेलापन को दर्शाता है। जीवन के प्रति साधवी का दृष्टिकोण कलात्मक एवं भावात्मक है लेकिन पति यतीन अत्यधिक व्यावहारिक है। जीवन उसके लिए केवल सुख-सुविधाओं तक सीमित है। उस बडे महल और नौकर-चाकरों में साधवी का मन घुटता है इसलिए सूने से कमरे में अपने चित्रों के कटघरे में कैद होकर वह अपनी अकेलापन की यातना भोगती है। एक दिन उसकी अकेलापन की त्रासदी फूट पड़ती है।

ममता कालिया के 'नरक-दर-नरक' उपन्यास में जोगेन्द्रसाहनी एवं उषा पति-पत्नी थे। प्रेम विवाह के तुरन्त बाद ही विवाह के दायित्व उषा को आटे दाल का भाव सिखा देते हैं। धीरे-धीरे उसे लगता है कि साहनी की माँगें और उपेक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं। उसकी निःशब्द सजाएँ उषा के लिए असह्य हो जाती हैं। घर के भौंडे कामों के अम्बर और अकेलापन की भिन-भिन में उसे अपनी प्रेमकहानी का अन्तिम वाक्य चेतावनी की तरह नज़र आता।

सूर्यबाला के 'मेरे सन्धिपत्र' उपन्यास में अनमेल विवाह के दुष्परिणाम रूप में अकेलापन की दुर्व्यथा में आनेवाली 'शिवा' की कहानी है। दो बच्चे के पिता सेठ से उसकी शादी हुई थी।

एक बच्चे के जनम होने पर ही सेठ की मृत्यु हुई। शिवा सोचती है कि - "सात रंगों के काँच से मढ़ी रायहवेली की पाँचवीं मंजिल पर बनी रंगमहल सरीखी बरसाती होती जिसके झरोखों से नीचे झाँक गालों पर हथेलियाँ टिकाए मैं एक उद्दाम सागर की कल्पना कर लेती.... इतना जल, इतनी शीतलता पी सकूँगी.... कब कर्तव्य की उस धार पर ममता और स्नेह की सच्ची धार चढ़ती गई पता नहीं।"[50]

मालती जोशी के 'पाषाणयुग' उपन्यास में चार बच्चों के पिता प्रोफसर से सोलहवर्षीय नीरजा शादी करने पर उसका जीवन रिक्तता एवं अकेलापन से त्रस्त हुआ क्योंकि बच्चों ने उसके आगमन को मंजूर नहीं किया इसलिए प्रोफसर भी उससे नफरत करने लगा। पति ने उसे केवल उनके पत्रों का, पुस्तकों का, धोबी का, दूधवाले आदि का हिसाब रखनेवाली मानी। 'ठीकरे की मँगनी' में महरुख ने रफत के बिना अकेले जीने का फैसला ले लिया। सुलोचना बालविधवा है। परंपरा एवं रूढीग्रस्तता के कारण उसे आजीवन अकेला रहना पड़ता है। वह कहती है, "मैं तो बालविधवा हूँ, जिस कुल की हूँ, वहाँ दूसरे विवाह के बारे में सोचना भी पाप है, सो बचपन से ही अकेलेपन से समझौता कर चुकी हूँ। मगर जब विवाहित औरतों के दुःखों को सुनती हूँ, तो सोचकर संतोष करती हूँ कि मैं बहुतों से भली हूँ, कम से कम गृहस्थी के नाम पर किसीके अत्याचार की शिकार तो नहीं हूँ। अब तो मन भी सन्यास ले चुका है। इस तरह की कोई इच्छा, कोई उमंग भी मन में नहीं उठती है।"[51] यहाँ बालविधवा की अकेलापन की त्रासदी की ओर इशारा किया है।

'तत्सम' उपन्यास में पति की मृत्यु के बाद वसुधा का जीवन अकेलापन की पीड़ा से ग्रस्त हुआ। भैय्या ने उसे मायके में ले गया। लेकिन वहाँ माँ और भैया-भाभी की चुप्पी में सजगता एवं सहजता दिखाई देती है। "माँ पहले निःसंकोच बरसा करती थी। अब चुप बन रहती है चाहे घंटों कुढ़ती रहे। भाभी ठिठोली करती रहती थी हर समय अब चुप हुई रहती है - नहीं तो चौकन्नी। शरत भैया पहले खुले रहते थे, अब पूरी तरह से बंद। घरवालों की इतनी सजगता, इतनी सहजता देखकर वसुधा को दुःख होता था। वह सामान्य थी - जीवन की धूप, ताप, दाह सब सह सकती थी। अब दग्ध है - लूटी हुई। पिटी हुई। दया से, करुणा से अतिरिक्त सहानुभूति से उसे बचा संभालकर रखा जाए"[52] यहाँ अकेली विधवा को अपने घरवालों से भी अकेलापन की पीडा महसूस हुई है।

निरुपमासेवती के 'मेरा नरक अपना है' उपन्यास में आशा ने अपने मंगेतर मर चुकने पर आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा ली। इसी कारण उसके भाई-भाई से अलगाव हो जाता है। अन्त में वह स्कूल में नौकरी करके अकेलापन में जीने लगी।

कामकाजी नारी भी अपने कर्मक्षेत्र में अकेलापन की पीडा से ग्रसित होती है। पुरुषवर्चस्वता से विरक्त होकर, 'फ्रीलान्सर' की नायिका शाहना चौधरी एवं हड़ताल की आहता ने अकेले रहने का निर्णय किया। यहाँ शाहना चौधरी स्वतंत्र जीवन जीने के लिए तथा आर्थिक स्थिति मज़बूत करने के लिए फ्रीलान्सर बन जाती है और अपने जीवन की समस्याओं से भी बच जाती है। शहाना हमेशा कर्म को महत्व देती है। उसकी मान्यता है - "मेरी किस्मत मेरी अपनी मेहनत, मेरा अपना पुरुषार्ष है।"[53] साहस, निर्भीकता और परिश्रम के बल पर शहना एक अच्छी फ्रीलान्सर बन जाती है और सुखद जीवन व्यतीत करती है।

शशिप्रभाशास्त्री के उपन्यास 'कर्करेखा' में भी नारी के एकाकीपन को उजागर किया गया है। निरन्तर एकाकीपन की व्यथा झेलती तन्वी चिन्तन करती है कि "शायद वह बेटा आए.... उसे छाती से चिपटा ले, अपनी बाँहों में भर ले रसाक्तित कर दे।"[54]

'कुमारिकाएँ' उपन्यास में कृष्णा अग्निहोत्री ने एकाकी नारीजीवन का चित्रण किया है। रोज़ के पिता स्मग्लिंग करते हैं और पकडे जाने पर पाकिस्तान भाग जाते हैं। माँ भी पिताजी के साथ चली जाती है। आर्थिक परेशानियों के कारण 'रोज़' बैंक में नौकरी करने लगती है। किन्तु यहाँ उसे अपने ही सहकर्मियों द्वारा हमेशा कुछ न कुछ फबतियाँ सुननी पड़ती हैं, अश्लील पत्र मिलते हैं। इससे तंग आकर वह अपने बॉस से शिकायत करती है तो वह उत्तर देता है - "रेगिस्तान में यदि हरियाली हो तो सभी हरियाली देखना चाहते हैं।"[55] रोज़ के जीवन में पुष्प, अरविन्द आदि आते हैं किन्तु विवाह नहीं करता। अन्त में शान्ति की तलाश में वह नौकरी से त्यागपत्र देकर ईसाई धर्म अपना लेती है, वर्किंग गर्ल्स होस्टल में जाकर रहने लगती है।

'उन शाखों पर' उपन्यास में तनुजा नौकरी करके स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहती है क्योंकि वह देखती है कि विवाह करके भाभी, मम्मी और बहन ने दुख व पराजय पाया है किन्तु वहाँ शिक्षा संस्था के संचालक ही उसका कौमार्य नष्ट कर उसे जीनेलायक नहीं छोडते। आज नारी अपने पैरों पर खडी होकर भी समाज के भेडियों के आगे पराजित है। इसी वजह से

अकेलापन को झेलनेवाली तनुजा भी समाज की इस प्रवृत्ति को देखते हुए निशिकान्त से विवाह कर अपने जीवन की दिशा बदल देती है।

शुभावर्मा के 'मोहतरमा' में शहला कामकाजी नारी है जो परिवार से दूर एक अन्य नगर में अकेले रहने लगती है। जीवन के प्रति उसको अपना दृष्टिकोण भी है। वह दहेजप्रथा की विरोधी होने के कारण अविवाहित होकर अकेला जीवनयापन करने लगी। डॉ. सीता मिश्रा के अनुसार - 'मोहतरमा' उपन्यास समाज में अकेली नारियों की जीवन स्थितियों को उजागर करनेवाली सशक्त रचना है।"[56]

निरुपमा सेवती के 'बँटता हुआ आदमी' उपन्यास में अनिता फिल्म जगत में काम करनेवाली युवती थी। उसने शरद से प्रेम किया था, लेकिन शरद ने दूसरी लडकी से शादी की और अनिता की सौतेली बाप ने एक बूढे व्यक्ति से उसकी शादी करवायी। उसके जीवन में अकेलेपन की सन्नाटा छाया मात्र थी। फिर भी शरद उसके मन में था। "और पता है पूरा एक हफ्ता बिस्तर पर पड़े हुए मैं ने अकेलेपन का विराटतम स्वरूप पाया था और मैं जैसे सोच ही रही थी कि इसे पूरी तरह देखूँगी - एकदम पूरी तरह। देखूँगी अन्त क्या होता है? क्या मैं शीशी की सारी गोलियाँ निगल जाऊँगी....? मैं देखूँगी मृत्यु का आगमन, आलिंगन.... पर मैं मरी भी नहीं। जिन्दा हूँ तुम्हारे सामने सही सलामत यह जिजिविषा कितनी भूखी है। शरद और वह जैसे जबरदस्ती मुस्करा दी थी।"[57] अकेलेपन की कडुता ने उन्हें मृत्युपाश तक जाने की प्रेरणा दी।

5.3 विधवा नारी

पति के अलावा स्त्री का अस्तित्व नामुमकिन है। पतिविहीन नारी को समाज शंका की दृष्टि से देखता है। सिमोन द बोडवार का मानना है कि "पुरुष अपने अस्तित्व के अतिक्रमण की क्षमता से सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होने के कारण जिस पूर्णता के बोध को हासिल करता है वह स्त्री के लिए संभव नहीं, क्योंकि स्त्री को स्वयं को कामना की वस्तु बनाये रखना पड़ता है।"[58] यदि स्त्री विधवा हो तो उसका जीवन अतिकटु बन जाता है।

प्रभा खेतान के 'पीली आँधी' में आर्थिक कमी के कारण पद्मावती की शादी अधिकवय के माधोबाबू से हुई। लेकिन बालविधवा होना ही उसकी नियती थी। उसने अपने देवर के बच्चों की देखभाल एवं रंगूटाहाउस की देखभाल भी की। परन्तु विधवा होने से उसकी भावनाओं की जो

हत्या हो गयी उस पर हरिकृष्णराय की टिप्पणी महत्वपूर्ण है - "सतृष्ण कामना से तड़प उठनेवाली पद्मावती अनमेलविवाह और फिर वैधव्य से अभिशप्त वेदी पर उस पशु की तरह छटपटाती है। जिसका सिर पूरी तरह धड़ से जुदा न हुआ हो। हज़ारों वर्षों से पदच्युत, पददलित, अत्याचार पीड़ित स्त्रियों की यही विडंबना है।"[59] विधवानारी के चारों ओर जंजीरें हैं उसे तोड़ डालना मुश्किल की बात है। सुराणा ने पद्मावती को पुनर्विवाह करने की इच्छा प्रकट की लेकिन पद्मावती ने उत्तर दिया कि "सुराणाजी मैं विधवा हूँ। विधवास्त्री को पुरुष का ख्याल भी गलत है। है ना...."[60] अपने मन में प्रेम भावना होने पर भी वह अपनी ओर सिकुड़ना चाहती है। शशिकला त्रिपाठी के अनुसार, "पद्मावती, जो दकियानूसी परंपराओं, रीतिरिवाज़ों की विसंगतियों को शिद्दत से महसूस करती है, किन्तु घर की 'चौखट' लांघने को साहस नहीं कर पाती क्योंकि हिन्दू स्त्रियों के लिए 'सती' होना आसान है, अपनी इच्छाओं.... आकांक्षाओं को प्रकट करना दुष्कर"[61] विधवा नारी की विडंबनापूर्ण ज़िन्दगी का पर्दाफाश लेखिका ने यहाँ किया है।

'कोरजा' उपन्यास में श्रीमती मेहरुन्निसा परवेज़ ने 'शोना माँ' के रूप में विधवानारी का चित्रण किया है। शोना माँ पति की मृत्यु के पश्चात् मकान के किराये से अपना सारा खर्च चलाती है। बडा बेटा शराबी है, तो छोटा पागल। अनब्याही लड़की 'मोना' भी इस घर के लिए सभी प्रकार के कष्ट उठाती रहती है। आर्थिक विषमता ही विधवा नारी के आगे की चुनौती है। आर्थिक विषमता और परिवारवालों की गरीबी दशा के कारण विधवा साजोखाला अपने जीवन और आत्मगौरव का कुर्बान कर देती है। घर खाली करने के लिए घर मालिक जुम्मन उसके पीछे लगा रहता है। जुम्मन इस शर्त पर घर खाली नहीं कराता कि साजो रोज़ रात को उसकी शय्या बाँट दें। साजो विवशतावश इस शर्त को मान लेती है। रब्बो आपा नसीमा से कहती है, "जानती है नसीमा, आज हम इस मकान में रह रहे हैं, अगर साजोखाला ने अपने को कुर्बान न किया होता तो पता नहीं आज हम सब कहाँ मारे-मारे फिरते तब शायद हम लोग भी यहीं करते जो आज साजोखाला कर रही है।"[62] आर्थिक पराधीनता ने ही विधवा साजो को इस अनैतिक गर्त में धक्केल दिया है।

विधवाजीवन नारी के लिए अभिशाप है। सामाजिक रूढी रूपी जंजीर उसकी ज़िन्दगी में बाधा डाल देता है। चन्द्रकान्ता ने अपने 'एलान गली ज़िन्दा है' उपन्यास में विधवा भाभी का चित्रण किया है जो सुहागिन का जीवन व्यतीत करना चाहती है लेकिन सामाजिक बन्धन उसे जीने की संस्कृति नहीं देता है।

मालती जोशी के 'ज्वालामुखी के गर्भ में' उपन्यास में विधवा माँ की मानसिकता का चित्रण है, जो पति की मृत्यु के बाद अपना समस्त दायित्व छोटी बहन पर डालकर स्वयं सांसारिक मायामोह से विमुख होकर जीती है। माँ के होते हुए भी संतान माँ के प्यार से वंचित रह जाती है। उन्हें हर छोटी चीज़ के लिए मौसी का मुख देखना पड़ता है। जिसे वे सहन नहीं कर पाती। 'चाँद अमावास का' उपन्यास की सुनिता से यश्धन्त विवाह करना भी चाहता है लेकिन वह विधवा होने के नाते शादी न कर पाया। 'सीढियाँ' उपन्यास में विधवा मनीषी का चित्रण है जिस पर दुर्भाग्य के सारे तांडव लाद दिए जाते हैं - "घर का बेतुका पुराना सड़ियल रिवाज नई बहु के माथे पर कलंक बनकर रह गया था। बहु क्या आई अभागिन हमारे बेटे को ही ले डूबी.... बेटे की जगह तब केवल बहु भीतर घुसी थी, छम-छम करती हुई आवाज़ को किन्हीं क्रूर हाथों ने बुरी तरह दबोच कर रौंद डाला था - चूडियाँ, नेकलेस, कर्णफूल, झूमर सब तोड़ खींचकर लुप्त कर दिये गये थे। घंटों अचेत पड़ी उसको लाश की तरह उठाकर तुरन्त माँ की दहलीज पर जाकर फिर डाल दिया गया था।"[63]

'फ्रीलान्सर' की विधवा रोजी जीवनयापन के लिए सैम के दफ्तर में नौकरी करती है। विधवा होने के नाते 'सैम ने उसे अपने हवस की शिकार बनायी। वह रोजी को अपनी कैबिन में बुलाकर कहता है, "जानेमन, खत्म कर दो मन की उदासी। भूल जाओ उसको जो अभी कभी नहीं हो सकता। यही तुम्हारा काम है यहाँ।"[64] विधवा नारी का शोषण यहाँ देख सकते हैं।

'अभिषेक' की वेणु अमीर परिवार की बहु है। विधवा होने पर ससुर के आग्रह से ससुराल में रहती है, क्योंकि वह उनके पोते की माँ थी। समय काटने के लिए वह कपडे के मिल का कारोबार देखती है। जब वह कारोबार के सिलसिले में पुरुषों से मिलने-जुलने लगती है तो ससुर उसपर लाँछन लगाकर उसे परिवार एवं जायदाद से वंचित करते हैं। तब वेणु के अन्दर से विद्रोह बाहर निकल आता है - "परिवार की सारी बूढ़ी-बडी महिलाओं ने वेणु को घाट पर ले जाकर विधवा बनाना चाहा, लेकिन पहली बार वेणु ने कुछ विद्रोहात्मक स्वर में कहा, जो हो गया वह मैं समझ गयी हूँ, ये श्रृंगार चढ़ाकर पुनः उतारने की प्रथा से ही तो मैं विधवा नहीं होऊँगी।"[65] अन्त में ससुर ने भी उसे घर से निकाल दिया।

क्रान्ति द्विवेदी के 'अन्तिमा' उपन्यास में अन्तिमा विधवा है। अन्तिमा एवं हरीन्द्र के संवादों से विधवा नारी की मनोदशा व्यक्त होती है। अन्तिमा विधवा एवं तीन बच्चों की माता है

इसलिए वह पुनर्विवाह करना नहीं चाहती। लेकिन हरीन्द्र ने उससे विवाह करना चाहा - "मैं तुमसे विवाह करूँगा लेकिन तुमसे कुछ माँगूँगा नहीं, माँग सकता भी नहीं। केवल तुम्हारा निरन्तर साथ चाहता हूँ।" अन्तिमा, उत्तर देती है - "जो कुछ भी मेरे पास है, सबकुछ मैं आपको दे सकती हूँ। लेकिन विवाह कर लूँ तो दुनिया यही कहेगी कि मैं ने आपके धन के लालच में यह किया है।" आशय यह है कि आज भी विधवा नारी सभी ओर से शोषित व वंचित है।

मालतीजोशी जी ने 'निष्कासन' उपन्यास में विधवा की व्यथा एवं विधवाविवाह की ज़रूरत पर प्रकाश डाला है। नरेन्द्र की मृत्यु के बाद माया अकेली हो गई। एकमात्र बेटी थी विधु लेकिन उसके पडोसी गंगाधर ने एक दिन घर आकर विधू से अत्याचार किया। इस अन्याय ने माँ-बेटी के रिश्ते में दूरियाँ पैदा कीं। गंगाधर ने आत्महत्या कर ली, लेकिन बेटी के मन में माँ से नफरत थी। उसने कहा था - "तंग आ गयी हूँ तुम्हारी जासूसी से। तुम्हें क्या लगता है, मैं समझ नहीं पाती। कोई भी आता है मेरे पास, तो तुम्हारे कान खडे हो जाते हैं। मेरी टीचर आएँ तो, मेरी सहेलियाँ आएँ तो, यहाँ तक किसी के साथ भी मुझे घड़ी भर चैन नहीं लेने देती हो। गिद्द की तरह मँडराया करती हो आसपास क्यों?"[66] विधवा माँ की अनुपस्थिति में विधु की शादी भी हो गयी। अन्त में अकेलापन की मनोव्यथा में तडप रही माँ ने दो बच्चों के पिता डॉ. कोहली से शादी की। कोहली के साथ पत्नी का कर्तव्य निभाते समय भी माया का मन बेटी गुड़िया के पास था। उसने डॉक्टर कोहली से बताया कि - "सच तो यह था कि सैकड़ों योजना की मानसिक दूरी के साथ जब दो शरीर मिलते हैं, तो उस मिलन में कोई मांगल्य, कोई सौन्दर्य, कोई अर्थ नहीं रह जाता।"[67] ज़िन्दगी में अकेला होना मानव को विशेषकर विधवा नारी को मानसिक उलझन का कारण है।

सूर्यबाला के 'मेरे सन्धिपत्र' में शिवा का विवाह तीन बच्चोंवाले एक विधुर से हुआ। इसी वजह से उसका वैवाहिक जीवन तनावग्रस्त हो गया। शिवा ने पति की मृत्यु के पश्चात अपने प्रेमी रत्नेश को सर्वस्व समर्पित करने का साहस दिखाया। यहाँ विधवा कुछ आधुनिक बनकर अपने अस्तित्व को जीत लेने के धैर्य दिखाने का प्रयत्न करती है।

विधवा अपनी ज़िन्दगी का पुनर्निर्माण करने के लिए पहले न उद्यत होती है। वह उसी स्तर पर जीने की जिम्मेदारी में अटल रहती है, लेकिन ज़िन्दगी की कट्टरेपन से उसे विचलित होना पड़ता है। सुनीताजैन के 'मरणतीन' उपन्यास की गोमा अध्यापिका है जो पति की मृत्यु के बाद बेटे के पालनपोषण में अपना जीवन व्यस्त करती है। उसके जीवन में डॉ. वर्मा आता है,

लेकिन उसे स्वीकारने में वह पहले मंजूर नहीं थी, लेकिन बेटे की जबरदस्ती से उसने वर्मा को स्वीकार किया।

परंपरागत संस्कारों के कारण विधवाओं के मन में हीनता की ग्रन्थी सक्रिय हो जाती है। 'तत्सम' उपन्यास की विधवा वसुधा अपने आपको संसार का सबसे अभागा एवं उपेक्षित प्राणी मानती है। उसका पति निखिल एक सडक दुर्घटना में अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पति की स्मृति में वह जीना चाहती है लेकिन भाई-भाभी ने उसे पुनर्विवाह कराने के लिए ज़बरदस्ती की। पुराने संस्कारों से जुडी वृद्धा माँ को वसुधा का विधवा होना, 'भगवान की मरजी' लगता है। नए विचारों की भाभी इस पर आपत्ति उठाती हुई कहती है, "भगवान की मरजी में अपनी मरजी जोड़कर तुम उसकी ज़िन्दगी को क्यों हराम कर रही हो अम्मा.... ज़रा सोचकर तो देखो, किसी की औरत मर जाए तो मसान में ही रिश्ते आने लग जाते हैं मरदों के, और औरतें....।"[68] अन्त में विधवा के यातनामय जीवन को त्यागकर वसुधा आनन्द से पुनर्विवाह करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में विधवा रेशम दूसरे संबन्ध में गर्भवती बन गयी। सास अपने कनिष्ठ पुत्र से उसकी शादी तय करती है लेकिन रेशम इनकार करने पर उन्होंने उसे गाली दी और बच्चे को मारने के लिए जहर भी दिया, न पीने पर रेशम को मार-पिटाई भी की - "फस्सा, तू मेरी देहरी पर लेडिया जनेगी? बोल छिनार, बोल। चोटी को बेदर्दी से झटके दिए और उसकी नरम गोरी बाँह में अपने घिसे मगर तेज दाँत गाड़ दिये। दोनों में गुत्थाम गुत्था हो गई।"[69] विधवा अबला होने के नाते ही सास ने पुरुष मानसिकता को अपनाकर उसे प्रताडित किया।

कृष्णासोबती के उपन्यास 'दिलोदानिश' की छुन्ना विधवा हो जाने के पश्चात् वैधव्य का दुःखी, विवश व बन्दिनी जीवन जीना नहीं चाहती। कलाइयाँ सूनी हो जाने पर उम्रभर लानत-भलामत सहने को तैयार नहीं। हमेशा सत्यंग पूजा में मन लगाने को भी तैयार नहीं। विधवा को एक स्त्री न माननेवाले समाज के सम्मुख उसका कहना है - "एक नाम धर दिया हमारा, विधवा, वह तो सगुणशास्त्र के बाहर उसपर इन सब खामियों, नाकामियों के जिम्मेदार भी हमी। इनके लिए दुबारा से निकाल ले बिछुए और टिकुली। हद है अन्धविश्वास की।"[70] परिवारवाले उसे किसी विधवाश्रम में पहूँचाने का विफल प्रयास करते हैं। वह परंपरा को चुनौती देती हुई सफेद कपडे न पहनकर रंगीन कपडे धारण करती है।

5.4 वेश्यानारी

वेश्या बनकर जीना स्त्री के लिए अभिशाप की बात है। जन्म से कोई वेश्या नहीं बनती है। पारिस्थितिक स्थितियों के अनुसार उसे इस तरह का जीवन बिताना पडता है। भारतीय समाज की सभी समस्याओं में वेश्या-जीवन की समस्या सबसे गंभीर है। महिला उपन्यासकारों ने वेश्याजीवन की विविध स्तरीय समस्याओं का प्रभावी चित्रण किया है।

मृणाल पाण्डे के 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में पार्वती वेश्या का जीवन व्यतीत करती है। पारिवारिक समस्याओं के कारण ही वह इस देह व्यापार के धंधे में आ गयी है। "गरीब रिश्तेदारों के घरों में दुत्कारे जाते पिल्ले-सी पलती अनाथ अल्पवय पर गिद्ध मंडराते एक दलाल की नज़रों में आ गई थी, और फिर उसकी एक कुटनी हाथ थामकर एक बस से उसे दिल्ली के किसी फार्महाउस के तलधर में ले आई थी।"[71] एक अबलानारी की निस्सहायता की छाप यहाँ व्यक्त हुई है। लेकिन समकालीन सामाजिक यथार्थता से जागरूक नारी ने इसे अर्थसंपादन के मार्ग व व्यवसाय के रूप में भी चुन लिया है। यहाँ पार्वती की स्वीकारोक्ति है "एक को झेल जाओ दूसरी को पचा जाओ तो साल एक में अपना फ्लैट खरीदनेलायक तो बन ही जाता था। अगले हफ्ते करोलबाग जाकर पार्वती अटैची भर धन्धे का सामान खरीद लायी थी।"[72] "मृणालपाण्डे नारीवाद को लेकर बहुत गंभीर है। नारीवाद उसके लिए फैशन नहीं, न पश्चिमी है, न पूर्वी, वह ठोस स्त्री हकीकत का बयान है।"[73] समकालीन समाज में इस लेन-देन की समस्या प्रचुरता में पायी जाती है।

आज के समाज में पैसे को ही केन्द्रबिन्दु समझकर नारियाँ इस धंधे में आती हैं। 'उस तक' उपन्यास की मुक्ता सामन्तवादी प्रकृति के 'सतपाल निगम' की स्टेनो है। साढे तीन सौ रुपये के मासिक वेतन से उसका खर्च पूरा न हुआ तो वह सतपाल को अपने वशीकरण में डाल देती है। "पलंग से लेकर घर और परफ्यूम से लेकर विदेश-भ्रमण तक उसे सतपालबाबू की कृपा से अनायास ही मिल जाते हैं, किन्तु निःशुल्क नहीं। सतपाल के साथ शाम बिताकर मुक्ता को उसके मुँह के चेचक के दाग अपनी हथेलियों पर उगते नज़र आते हैं।"[74]

'एक ज़मीन अपनी' की नीमा अपने व्यवसाय की तरक्की के लिए अपने बडे अफसरों को खुश रखती है। एक विज्ञापन में अपने सारे कपड़े उतारकर तट पर दौडती दिखाई पडती है। वह अपनी शर्तों पर जीवनमूल्यों को जीना चाहती है। नारी फैशन शो में भाग ले रही है, विज्ञापनों

में आ रही है और अधिक से अधिक कीमत अपनी देह की वसूलना चाहती है। 'फ्रीलान्सर' उपन्यास की रोजी और रूमा सन्थाल अर्थप्राप्ति के लिए अपने बाँस के सामने नंगा होने में या देहव्यापार करने में गलत महसूस नहीं करती। 'प्रायश्चित' उपन्यास की नन्दिनी देशी ग्राहकों और पर्यटकों के हाथों अपने को टुकडों-टुकडों में बेचना शुरू करती है। 'अकेलेपलाश' में मॉडलिंग के पेशे में आकर देह व्यापार करना भी नारियों को बुरा नहीं लगता।

आर्थिक पराधीनता से युक्त लडकी को पुरुष जानबूझकर कैसे चक्कर में डाल देता है इसका चित्रण रजनीपनिकर के 'दो लड़कियाँ' उपन्यास में भी है। रंजना को सेठ कन्नौडिया के दफ्तर में प्राइवट सेक्रटरी का काम मिलने पर वह बहुत खुश हुई। वेतन के रूप में एक हज़ार रुपए, रहने के लिए मकान, फोन, कार आदि अनेक सुविधाएँ मिलने पर वह निस्तब्ध हुई। लेकिन जब एक दिन मीटिंग के बहाने सेठ उसे दिल्ली से फरीदाबाद ले जाता है और निस्तब्ध गैस्टहाउस में उसके शरीर से वह खिलवाड करता है तो वह पाषाण बन उसके सारे व्यवहार को झेल जाती है। वह स्वीकार करती है कि "नौकरी ही की होती तो भी बात थी। यह तो नौकरी के साथ मैं ने अपने आपको बेच दिया हुआ था।"[75] इसप्रकार अनजाने ही देह-व्यापार की श्रृंखला में रंजना भी आ गई।

नासिराशर्मा ने अपने उपन्यासों में वेश्यावृत्ति का चित्र उतारने के साथ उस पर आलोचनात्मक दृष्टि भी डाली है। उनके कथासाहित्य के संदर्भ में ब्रह्मस्वरूप शर्मा का कहना है कि, "भिन्न समाज के भिन्न पात्र होते हुए भी समाज और पात्र जाने-पहचाने लगते हैं। समाज में नारी की भोग्या स्थिति को उभारकर उन्होंने पुरुष की शोषकवृत्ति की ओर संकेत किया है। होटलों, क्लबों और इसीप्रकार के अभिसार गृहों में हो रहे नारी देह व्यापार को उन्होंने कुशलता के साथ उभारकर उसके प्रति विक्षोभ जताया है।"[76]

कई लडकियाँ नारीशोषण के कारण वेश्या बनती हैं। 'कुमारिकाएँ' उपन्यास की बसन्ती महख और हबीब के बलात्कार की शिकार हो वेश्या बन जाती है। जब उसकी माँ यह जानकर उसे रोकना चाहती है तो वह कहती है - "तुमसे ज़्यादा मैंने सोचा था और क्या अपने को रोज़ तोडते रहना मुझे अच्छा लगता है परन्तु गरीबी निभती नहीं। शील की प्रशंसा सब करते हैं माँ, उसकी हिफाजत करने में कोई आड़े नहीं आता न। चल उठ अब बहुत देख चुकी दुनियादारी।"[77] यहाँ पुरुषों के धोखे से कई युवतियाँ शोषण का शिकार बन जाती हैं।

भिन्न-भिन्न परिस्थितवश कई स्त्रीयाँ इस अनैतिक धंधे में आ जाती हैं, लेकिन इससे छुटकारा पाने की लालसा है तो भी उससे न बच निकलती। 'आवाँ' में अनीसा इस धंधे को छोड़कर श्रम करने को सोचती है जैसे - "धाटकों पर रेलवेलाइनवाली रण्डियों में अनीसा का स्मरण है तुम्हें? विमलाबेन 'जागोरी' आह्वान के अंतर्गत जिसे धन्धा छुडवा 'जयहिन्द ऑयल' मिल में नौकरी पर रखवाया था"[78] लेकिन यही समाज उसे वेश्यावृत्ति के लिए मज़बूर करता है। यह काला कलंक वेश्याओं को ग्राहक द्वारा कैसे प्रताडित किया जाता है उसका भी चित्रण देखने लायक है। यथा "उसी दोपहर की घटना है रोज पाण्डेय जी अस्पताल में दाखिल हुए। किसी ग्राहक के साथ अनीसा का झगडा हुआ। ग्राहक इच्छा के विरुद्ध ज़ोर-जबरदस्ती उससे संभोग करना चाह रहा था।"[79] वह वेश्या जीवन का दुष्परिणाम है।

5.5 कामकाजी व आत्मनिर्भर नारी

समाज की सबसे निचली इकाई परिवार का गठन कुछ इस रूप से होता कि आजीविका के संसाधन जुटाने का काम पुरुष करता था और घर की व्यवस्था महिलाएँ करती थीं। लेकिन आज़ादी पूर्व के महिला जागृति आन्दोलनों और स्वातंत्र्यलब्धि के बाद के परिवर्तनों, विशेषकर शिक्षा के प्रसार और पुराने आर्थिकढाँचे के विखंडन के बाद के औद्योगिक विकास ने महिलाओं को घर की दहलीज से बाहर निकाला। आज नारी हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कर्यरत है क्योंकि नारी चेतना अब स्वतंत्रता और समानता का पक्षधर बनने लगी है।

समकालीन समाज में नारी अपने जीवन के कटु यथार्थ से समझौता करके, सभी क्षेत्रों में काम करके पैसा कमाने एवं अपने परिवार को संभालने की कोशिश कर रही है। फिर भी पुरुषवर्चस्व के अहंकार, पुराने सामाजिक ढाँचे की नैतिकता और सेक्स के प्रति पारंपरिक मान्यताओं ने कामकाजी महिलाओं के सामने हर तरह के संकट खडे किए। घर-परिवार में अपने ही सदस्यों के द्वारा उसका शोषण चल रहा है तो दूसरी ओर काम करनेवाले क्षेत्र में पुरुष कामुकता का शिकार भी उसे होना पड़ता है। समकालीन महिला लेखिकाओं ने कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में इस मूल्यसंकट की स्थिति को अपने उपन्यासों में उकेरा है। उन्होंने स्वावलंबन की दिशा में प्रयासरत नारी के संघर्ष और समाज की रूढ़िवादी सोच तथा पुरुषवर्चस्व की एकाधिकारवादी प्रवृत्ति को भी वास्तविकता के धरातल पर प्रस्तुत करने का काम किया है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करनेवाली नारियों की स्थिति बहुत चिन्ताजनक है। यदि घरवाले उसकी हालत समझने की कोशिश न करे तो इस धंधे के लिए उसे जो निर्मम ईमानदारी, पैनी दृष्टि और तटस्थ अभिव्यक्ति आवश्यक होती है वह निष्प्रभ बन जायेगी। चित्रा मुद्गल के 'एक ज़मीन अपनी' उपन्यास में नौकरीपेशा अंकिता अपने ऊपर होनेवाली छींटाकशी के बारे में कहती है - "नौकरी करनेवाली लड़की कहीं घर में बन्द होकर टिक सकती है? अरे, इसका तो अपने फुफेरे भाई के साथ पुराना चक्कर था, दुल्हे ने रंगे हाथ पकड़ा था।"[80] इसी उपन्यास में अंकिता की सहेली उसे वर्जनाओं के इस घेरे को तोडकर बाहर आने की पैरवी करती है। उसकी दृष्टि से सफलता उपलब्ध करने के लिए इन तमाम संकटों से जूझना पडेगा और अपनी नैतिकता स्वयं गढ़नी होगी। वह कहती है - "अंकू! मैं ज़िन्दगी में जो कुछ हासिल करना चाहती हूँ, उसे तुम्हारे तर्ज पर चलकर कोई लड़की हासिल नहीं कर सकती और तुम्हें क्या लगता है तुम्हारी छवि सती-साध्वी की है? जब कि मैं जानती हूँ कि तुमसे कभी कोई समझौता नहीं हो सकता.... मगर लोगों का मुँह तो बन्द नहीं किया जा सकता?"[81] इस तरह के अपवादों की सृष्टि करनेवाले सिर्फ पुरुष ही नहीं हैं, स्त्रियाँ भी हैं और बडी संख्या में। इस स्थिति पर उपन्यास का एक पात्र हरीन्द्र टिप्पणी करता है - "अगर वह सुन ले कि फलां-फलां स्त्री ने पति की ज़्यादतियों के विरोध में साहसपूर्वक घर छोड़ दिया है और अपने पैरों पर खड़ी आत्मसम्मानपूर्वक जीवन जीने का प्रयास कर रही है तो अचानक उनकी संवेदना सूख जाती है। क्यों?..... वस्तुतः उस औरत के जुझारू व्यक्तित्व के समझ स्वयं को बौना महसूस करती है।"[82]

शुभा वर्मा ने 'फ्रीलान्सर' उपन्यास में पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करनेवाली शहना चौधरी की समस्याओं का चित्रण किया है। भारतीय समाज में मुक्त पत्रकारिता का कार्य अविवाहित स्त्री के लिए अनेक कठिनाइयों से भरा है। अपने काम में उसे नित नये जोखिमों से गुज़रना पडता है, विशेषकर पुरुषों की नारीलोलुप दृष्टि से। उसके सामने पुरुष का अनैतिक व्यवहार एक ज्वलन्त समस्या बनकर उपस्थित होने पर भी कामकाजी नारी को अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिए वहीं काम ज़ारी रखना पडता है। "आज का पुरुष समाज बौखलाया हुआ है। स्त्री को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखकर स्त्री पर विजय पाने का एक ही रास्ता उसे सूझ रहा है और वह अन्धाधुन्ध उस पर गिरता-पड़ता आगे बढ़ रहा है।"[83] शाहना पत्रकारिता के क्षेत्र में चलते आ रहे अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाकर अपनी शक्ति की पहचान देती है।

कामकाजी नारी के लिए घर में पति का सहयोग न मिलता तो उसे ज़िन्दगी के रास्ते में अधिक तकलीफ होती है। 'कालचक्र' उपन्यास की कल्पना पत्रिका में रिपोर्टर है, वह घर में पति की मदद चाहती थी। उसका विचार है - "वह कार्यक्षेत्र से काम करके थककर घर आती है तो पति भी घर के कामों में उसकी मदद करे। वह मदद क्यों नहीं करता यही मूलभूत प्रश्न है। दोनों कमाते हैं तो दोनों मिलकर घर के कामकाज करें। इसमें गैर क्या है? यही झगड़े की जड़ है दोनों में।"[84] काम करके थकी आई हुई पत्नी को पति की सांत्वना एक ऊर्जा ही है। वह न मिलती तो वह बेचारी नारी और भी थक जाएगी और दुःखी होगी।

'हड़ताल' की शाहना 'आफ्टरनून' पत्र की रिपोर्टर थी। उसने पत्रकारिता जगत में व्याप्त भ्रष्टाचारों को हटाने का भरसक प्रयत्न किया। 'आफ्टरनून' समूह को हर वर्ष मार्च महीने में बोनस और वेतन की बढोत्तरी दी जाती है। पर नया जनरल मैनेजर 'मेहता' ऐसा कोई भी लाभ कर्मचारियों को देने के पक्ष में नहीं था। यह कुकर्म कर्मचारियों में आक्रोश जगाता है। धीरे-धीरे तनाव बढ़कर हड़ताल प्रारंभ हुआ। शाहना ने भी हड़ताली कर्मचारियों को मनोबल देने का प्रयत्न किया। वह अपने लिए ही नहीं अपने समूह के सहकर्मियों के हितों के लिए भी मनमुटाव आन्दोलन करने के लिए बाध्य हो जाती है। अन्त में संसद में विपक्ष के प्रयासों से 'आफ्टरनून' के प्रबन्धकों को अपने हड़ताली कर्मचारियों से समझौता करना पड़ता है। कर्मचारी अपनी माँगों को मनवाने में सफल होते हैं। यहाँ लेखिका ने कामकाजी क्षेत्र में कार्यरत नारी के आत्मबल का चित्रण ही बेखूबी किया है।

आत्मनिर्भरता की तलाश करनेवाली इन महिलाओं को एक नहीं, अनेक बाधाओं से गुज़रना पडता है। ये अवरोधक समाज और परिवार में एक समान होते हैं। नारियों की इसी खतरनाक दशा को दर्शाते हुए 'आवाँ' का पवार कहता है - "विडम्बना यह है कि इतने वर्षों बाद भी वे अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति उपेक्षित पडे ब्लैकबोर्ड की भाँति है जिसपर कोई ककहरा अंकित नहीं किया गया।"[85] एक श्रमिक नेता नीता को नौकरी देता है बदले में नीता को उसकी यौन विकृति का शिकार होना पड़ता है। वह नीता को समझाता है - "दोस्त की बेटी हो तुम, बेटी नहीं हो मेरी। पिता समान हूँ मैं, तेरा पिता नहीं हूँ। रिश्ते की इस गहन अंर्तसूक्ष्मता को महसूस कह लोगी तो स्वयं को संबन्ध से शोषित महसूस नहीं करोगी।"[86] वास्तव में उस नेता के मुँह से निकले कुत्सित वासना के इन घृणित शब्दों में कामकाजी महिलाओं के यौन शोषण का पर्दाफाश हुआ है।

मालती जोशी के 'रागविराग' में कामकाजी नारी को झेलनी पडी विसंगतियों का चित्रण है। कल्याणी उच्चशिक्षित एवं संगीतज्ञानी भी थी। उसका पति मनोज क्लर्क का काम करता था। कल्याणी की प्रेरणा से उसने एक अच्छे काम की तलाश की और आर्थिक रूप से अधिक संपन्न भी हुआ। पति के कहने पर कल्याणी संगीत छोड़कर गृहस्थी काम में लीन हुई। अब कल्याणी घरेलू नारी है तब पति ने उसे अन्य नारियों की तुलना में भाग्यवति बतायी। "उन्हें सुबह शाम खाना बनाना पड़ता है, बच्चे को नहला-धुलाकर आया के घर छोड़ने जाना होता है, बाज़ार से सौदा-सुलुफ भी वे ही लाती हैं, तुम तो इन सारे झंझटों से बची हुई हो। सलीके से रह तो सकती है।"[87] यहाँ कामकाजी नारी की परेशानियों के बारे में वह कल्याणी को समझाता है। आखिर सास-ननद से भी बेकारी कल्याणी अवहेलना का पात्र बन गयी। तब तक उसका स्वास्थ्य बिगड गया, उसे अस्पताल में दाखिल किया गया। घर आने पर दूसरी शादी के लिए तैयार होनेवाले पति को देखकर वह असमंजस्य में पड़ गयी। बेचारी युवति फिर संगीत की दुनिया में लौट आयी। यहाँ आर्थिक सुरक्षा के बिना, नौकरी के बिना नारी की ज़िन्दगी कितनी कटुतायुक्त बन जाये इसका सीधा चित्रण मिलता है।

कई पुरुष, पत्नी शिक्षित होने पर भी उसे कामकाजी बनने से इनकार करते हैं। उनका विश्वास है कि पति की सेवा-सुश्रूषा करना ही पत्नी का दायित्व है। नासिराशर्मा के 'शाल्मली' में नरेश ने पत्नी से बताया कि "तुम घर में रहकर गृहस्थी और मुझे संभालो। इतना हाथ बंटाओ मेरा, फिर देखो मैं आकाश का पूरा सूर्यमण्डल तुम्हारे चरणों पर रख दूँगा।"[88] शाल्मली शिक्षा प्राप्त कर केन्द्रीय लोकसेवा आयोग की परीक्षा पास कर आई.ए.एस. अफसर बन जाती है। शिक्षित नारी को इज्जत देने या सामाजिक क्षेत्र में उसे प्रतिष्ठा देने के लिए नरेश जैसे कई जुगुप्सा भरे युवक आज भी तत्पर नहीं हैं क्योंकि पत्नी का पद यदि अपने ऊपर हो जाएँ तो पत्नी के सामने कुशग्रात हो जाएँ।

'ठीकरे की माँगनी' की महरुख ने मुस्लिमपरिवार एवं समाज से लड़ने के लिए शिक्षारूपी हथियार उठा लिया। वह नारी के लिए शिक्षा और नौकरी की आवश्यकता पर ज़ोर देती है। शाल्मली की ज़िन्दगी एक मशीन की तरह बन जाती है। परिवर्तन का पहिया विभिन्न स्वरों की गूँज से भरा, उसी गोलाई में घूमता रहा और शाल्मली घड़ी की सुई की टिक-टिक के साथ अपने को बाँधे भोर से सन्ध्या तक मशीन बनी काम करती और थककर घर लौटती। फिर भी

उसे पति का प्रेम तथा सहयोग नहीं मिलता। पति नरेश उस पर स्वामित्व का अधिकार दिखाता है। उसकी दृष्टि से वह सिर्फ पैसा कमाने का साधन मात्र है।

कामकाजी नारी का शोषण करनेवाला ऐसा पति भी है जो पत्नी के अर्थ के बल पर दाम्पत्य संबन्ध को बनाये रखता है। शशिप्रभा शास्त्री के 'परछाइयों के पीछे' में सुमित्रा कामकाजी औरत है। उसका पति महिपाल भ्रमर प्रकृति का जीव है जिसने एक स्त्री से बन्दकर रहना सीखा ही नहीं। यौवन के उद्दाम वेग को बाँधने के लिए उसे सुमित्रा के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री की भी आवश्यकता है किन्तु सुमित्रा से वह संबन्ध नहीं तोड सकता। कारण यह है कि सुमित्रा का वेतन, जिसके बिना वह तीन बच्चों की परवरिश और अपने एशोआराम की सामग्री नहीं जुटा सकता। अतः चिरौरी करके दहरादून में नौकरीरत सुमित्रा को अपने पास अम्बाला बुलाता है। "वह स्वीकार करता है कि स्वार्थ के तन्तु ने उसे सुमित्रा के साथ बाँध रखा है।"[89]

रजनी पनिकर के उपन्यास 'मोम की मोती' में नौकरीपेशा स्त्री की मनस्थितियों का चित्रण है। समकालीन समाज में नारी घर की चारदीवारी से बाहर आकर दफ्तरों के दरवाज़े खट खटाने लगी तो निश्चित ही उसे अपने जीवन में अनेक पुरुषों का सामना करना पड़ता है और अनेक नई स्थितियों से उसे गुज़रना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में 'माया' ऐसी युवती है जो माँ-बाप, बहिन और भाई के खर्चों का मात्र साधन बनकर रह जाती है। घरवाले उसके विवाह के संबन्ध में विचार भी न करते थे। 'माया' अपने बारे में सोचती है - "नौकरी करने से नारी-जीवन की आत्मसत्ता जाती रहती है। नारी हृदय की कोमल वृत्तियों का विनाश हो जाता है, दिन-रात अफसरों की खुशामद और ऑफिस के सहकर्मियों की त्रुटियाँ पकड़ने की धुन में रहते-रहते मन की कोमल भावनाएँ विदग्ध हो जाती हैं। यहाँ तक कि ऑफिस के क्षुद्र घेरे से दूर पहूँचनेवाली दृष्टि भी बिल्कुल क्षीण पड़ जाती है।"[90] अपनी सहेली के वैवाहिक जीवन के बारे में सुनकर माया के मन में ईर्ष्या होने लगी। उसे लगता है कि भगवान ने उसे रुपया, रूप, भाग्य कुछ भी नहीं दिया मानो दुनिया में भेजकर उन्होंने भी माया का उपहास किया है। "दोनों में कितने अन्तर है वह अप्रैल में काश्मीर की बहारें लूट रही है और माया अपने भाई को विलायत भेजने के लिए इस धड़कती धूप में काम कर रही है। लगता है विवाह के लिए वह बनी ही नहीं क्योंकि यह केवल संपन्न एवं धनी परिवार की लड़कियों के लिए एक मन-बहलाव है।"[91] कामकाजी एवं अविवाहित नारी की मनोव्यथा यहाँ मुखरित हुई है।

रजनी पनिकर के 'दो लड़कियाँ' उपन्यास की रंजना पर परिवार का संपूर्ण दायित्व है। वह अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए संघर्षरत दिखाई देती है। वह स्वीकार करती है कि "मैं किसी शौक को पूरा करने के लिए या फैशन पूरा करने के लिए नौकरी नहीं करती। मैं काम इसलिए करती हूँ कि घर की आवश्यकताएं पूरी हो जाएँ। परिवार के लोगों को दो समय का भोजन मिल सके।"[92]

कामकाजी नारी घर का काम एवं दफ्तरों का काम एकसाथ करने पर अधिक थकित हो जाती है। लेकिन इसके पीछे घरवाले की मदद भी न हो तो वह कैसे जी सकती? कृष्णा अग्निहोत्री के 'नीलोफर' की नायिका नीलिमा नौकरीपेशा नारी है। ससुरवालों की अर्थलालसा के कारण उसे घर के बाहर अधिक काम करना पड़ा और घर का सारा काम भी अकेला करना पड़ा। उसकी सास उसे अधिक से अधिक अर्थार्जन करने के लिए प्रेरित करती है। उसकी तनख्वाह सास खुद लेती है और पन्द्रह दिन में ही खर्च करती है। डॉक्टर नीलू अस्पताल में नौकरी करके घर आती है तो सास उसे कहती है, "नीलू कुछ पेर्शट घर पर भी देख लिया करो, अहमद का तो बिज़नेस अभी ठीक नहीं। घर खर्च में आसानी रहेगी।"[93] वह अपनी बहु की कमाई पर एशोराम की ज़िन्दगी बिताती है। अधिक थक जाने पर नीलिमा ने एक बार नाराज़ से बताया। "नौकरी.... नौकरी.... नौकरी। मैं भी तो इन्सान हूँ। मुझे भी पार्टी में जाना अच्छा लगता है।"[94] कामकाजी महिलाओं के सामने यह संकट ज़ारी रहता ही है।

शशिप्रभा शास्त्री की 'कर्करेखा' में तनु ने बहुत मुश्किल से ही एम.ए. पास की और उसे एक नौकरी भी मिल गयी। नौकरी मिलते ही माँ का रुख बदल गया। उसने आज की आम माँओं की तरह कह दिया, "दो चार साल नौकरी कर लो, तो शादी के लिए कुछ रुपया आ जाये।"[95] कामकाजी नारी के लिए यह भी बडी समस्या है कि घरवाले उसे केवल आर्थिकलाभ का स्रोत मानते हैं।

चन्द्रकान्ता के 'ऐलानगलीज़िन्दा' में दिव्या सबसे बडी बेटी है। पिता एक दूकान में काम करके जीवितोपार्जन पा रहे थे, लेकिन वहाँ की आय से घर का खर्च चलाना कठिन था। तीन बहिनें भी थीं इसलिए दिव्या ने बम्बई में 'गाइड' का काम किया। वहाँ विभिन्न तरह के लोग आते-जाते हैं। उन्हीं में ठीक बर्ताव करना उचित था। वह स्वयं स्वीकारती है - "यही याद रखती हूँ कि काम करना है और माता-पिता की उम्मीदों को पूरा करना है..... ऐसे में औरत हमारी फिल्मोंवाली

नाजुक कली कहाँ रह पाती है? वक्त से पहले समझाने को विवश होती है हम जो हर तरह के लोगों में रहने को मज़बूर रहती है।"[96] यहाँ पारिवारिक दायित्वों में फँस रहनेवाली बेटी की विवशता का चित्रण है।

निरुपमासेवती के 'बँटता हुआ आदमी की सुनन्दा ने घर की गरीबी को हटाने हेतु मुम्बई में जाकर फिल्मीदुनिया में काम पाया। "काम उसे हर कीमत में पाना है क्योंकि अपने भाई-बहनों को वह मंझधार में नहीं छोड़ सकती।"[97] परिवार के अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने शरीर को भी सौदाबाजी करने के लिए यह कामकाजी महिला विवश होती है। डॉ. शशिभूषण सिंहल ने इसे जटिल आर्थिक समस्या का सरल समाधान बताया है जो मात्र नारी के लिए संभव है।

निरुपमा सेवती की 'पतझड की आवाज़ें' में अनुभा का परिवार भी कठिन आर्थिक पराधीनता से संत्रस्त था। लेकिन अनुभा शरीर के माध्यम से नौकरी या पदोन्नती प्राप्त करने के पक्ष में नहीं थी। "उसके सामने केवल एक ही मार्ग था - नौकरी करके परिवार का आर्थिकस्रोत बढ़ाना - किन्तु देह के मूल्य पर नहीं। अतः उसे दो बार टाइपिस्ट की नौकरी से भी हाथ धोना पड़ता है।"[98] केवल मज़बूरी वश उसे रात देर तक वहाँ ठहराना पड़ा। इस संबन्ध में निरुपमाजी कहती है - "बाप ने कहा था कि तीन साल के लिए, पक्की नौकरी के लिए कान्ट्रेक्टर दे दें और तनख्वाह चार सौ से नीचे की न हो तो लड़की आठ, नौ बजे तक रुकी रह सकती है।"[99] कामकाजी नारी की विवशता यहाँ दृष्टव्य है।

शशिप्रभा शास्त्री के 'नावें' उपन्यास की मालती पिता के जीवित होते हुए भी पिता का दायित्व निभा रही है। कामकाजी मालती इस बात से आहत होती है कि "उसके माता-पिता उसके सुख-दुःख की ओर ध्यान नहीं देते। सोमजी की पुस्तकों का अनुवाद करके जब वह घर में अधिक पैसा लाती है तो भी वे अतिरिक्त आय का कारण नहीं पूछते?"[100] दफ्तर में अपने अफसर की इच्छा के अनुसार काम करना पड़ा तो उसने नौकरी से इस्तीफा दी। तब माँ ने पूछा - "और इन बच्चों का क्या होगा? पिता जो साफ साल भर से बीमार थे और बिना वेतन छुट्टी पर थे। मुझे उस नौकरी से सख्त आवश्यकता थी।"[101]

परिवार की आत्मनिर्भर व कामकाजी महिलाएँ अनिवार्यतः आत्मकेंद्रित होती हैं। ममता कालिया के 'बेघर' उपन्यास की संजीवनी मूक-बधिर माँ के पालन करने को अधिक उत्सुक थी।

"पैसे-पैसे के लिए भाई-भाभी के सामने हाथ पसारना, घर में माँ तथा पिता की उपेक्षा देखना संजीवनी को स्वीकार्य नहीं। अतः नौकरी करके वह आत्मनिर्भर हो गई है। उसे संतोष है कि अब भाभी न उसपर रौब गाँठ सकती है और न उसके किसी कृत्य की आलोचना कर सकती है। भाभी के अनुशासन से पूर्णतय मुक्त होकर उसे माँ की सेवा करने का समय भी मिल जाता है और साधन भी।"[102] माँ-बाप की सेवा शुश्रूषा के लिए या अपने खर्च केलिए भाइयों के आगे हाथ फैलाना उसके आत्मगौरव को क्षति मानती है। इसलिए वह बैंक आफ बरोडा में नौकरी करने लगी।

सिम्मीहर्षिता जी के 'यातनाशिबिर' में दिशा के स्कूल की अध्यापिका स्वाती की सास नौकरीपेशा नारी को नहीं चाहती थी इसलिए सभी समय उसे गालियाँ देती है "हमें नौकरीपेशा बहु नहीं चाहिए थी।.... अरे नौकरी तो सैर-सपाट का बहाना है। औरत की कमाई में बरकत नहीं होती। अरे कौन-सा तुम मुझपर एहसान करती हो? अरे कौन-सा मैं तुम्हारा खाती हूँ? अरे जिन्होंने रिश्ता करवाया था, कहा था, लड़की बडी अच्छी है। खाक अच्छी है। अपने उध की मैल हमारे यहाँ ले आई है।"[103] यहाँ कामकाजी नारी के संबन्ध में राजेन्द्र यादव का मानना उचित है कि "परिवार में स्त्री जो कुछ भी करेगी उसे पुरुषों की या पुरुष निर्धारित नियमों की आज्ञा लेनी पडेगी। हो सकता है इन नियमों का पालन करानेवाली सासनुमा कोई स्त्री ही हो। स्त्री से परिवार यानी घर, पति, बच्चों के लिए सिन्सयारिटी की माँग की जाती है।"[104] आर्थिक स्वतंत्रता की चाह होने पर भी परिवार व समाज में नारी को कई तरह की पीडाएँ सहनी पडती हैं।

'रास्तों पर भटकते हुए' की मंजरी अपने व्यस्त जीवन के बारे में बताती है - "तब जब मैंने इस धंधे में कदम रखा था रातें 'विरल थी', सुबह गर्मी की नदी की तरफ क्षीण, विरक्त करनेवाली गति से चलता काम, दो-तीन बजे रिपोर्टरों के आते जाते ध्वंसकारी और प्रगल्भ बन जाता।"[105] घर की दहलीज लाँधकर हिम्मत से बाहर नौकरी करनेवाली नारियों को अपवादों के घेरे में लाकर प्रताडित करने में भी परंपरावादी व नैतिकवादी समाज आगे है। कामकाजी नारी यदि देर से घर आती तो लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। 'कुमारिकाएँ' में कृष्ण अग्निहोत्री जी ने इस समस्या का चित्रण किया है। इस उपन्यास में वन्दना नौकरी के कारण शहर में एक फ्लॉट लेकर रहती है। वह ज़रा भी देर से लौटती है तो उसे मकान मालकिन प्रताडित करती है कि "आप तो कुँवारी है। इस तरह समय-कुसमय लौटना कहाँ का भलापन है।"[106]

मंजुलभगत के 'अनारो' की अनारो जो संस्कारसंपन्न युवती है लेकिन उसका जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। उसके पति को घर-परिवार की कोई चिन्ता नहीं है किन्तु यह बेचारी निम्नवर्गीय नारी अपने पति के अन्याय व अत्याचार को झेलते हुए भी अपने बच्चों की भूख मिटाने व अपनी बेटी की शादी के पैसे कमाने के लिए ही दूसरों के घर में काम करती है। डॉ. उषायादव के अनुसार "महानगर के झग्गी झोंपडी में रहकर ऊँची- ऊँची कोठियों में बर्तन-सफाई करनेवाली अनारो उस वर्ग का प्रतिनिधि है जो आर्थिक अभावों, सामाजिक रूढ़ियों और पुरुष के अत्याचार के तले दब-पिसकर अपनी जिजिविषा नहीं झुकने देता। स्वाभिमान के साथ जीने का संकल्प उसकी आँखों में काँपता रहता है।"[107] घर की मालकिन अनारो की बेटी की शादी एक विवाहसंस्था द्वारा करवाने का प्रस्ताव रखती है तो वह कामकाजी नारी क्रुद्ध होकर बताती है - "यों अपनी हड्डियों का चूरा बनाकर न पालती उसे। तुम करवा लो अपनी बेटी का ब्याह इस तरह? गंची कोई अनाथ है? कोई कानी-तूली है? चौबारे की ईंट नहीं तो नाली का पत्थर भी नहीं है, अनारो की बेटी है?"[108] स्वावलंबी नारी के स्वाभिमान भरे शब्द यहाँ ध्वनित हो उठते हैं। यहाँ प्रभाखेतान का मत है कि "मुक्ति की पहली शर्त है कि स्त्री आर्थिकरूप से स्वावलंबी हो। यदि इस शर्त को कोई औरत पूरा कर ले तो वह अपनी ज़िन्दगी की आधी से अधिक लड़ाई जीत लेती है।"[109] कामकाजी नारी की शक्ति और नियति को पहचानकर ही मंजुलभगत ने अपने पात्र से कहलवाया है कि "काम ही ने तन ढँका, काम ने ही पेट भरा, काम ही सुहाग, काम ही स्वामी।"[110] काम करके परिवार को संभालने की नियति आज अधिकांश रूप में नारी पर ही निर्भर है।

रजनी पनिकर के 'काली लड़की' उपन्यास की काली लड़की के जन्म से माता-पिता बहुत उदासीन एवं दुःखी थे। लेकिन शिक्षित होकर स्वावलंबी बनने से उसके तन की कुरूपता मन के सौन्दर्य के सामने फीकी पड गयी। लेखिका ने उपन्यास में यह उजागर करने का यत्न किया है कि "वास्तविक सौन्दर्य उसके तन के काले या गोरे होने में नहीं कोमल भावनाओं में निहित है। इस तरह रजनी पनिकर अपने इस उपन्यास में रोमांटिकबोध का ही परिचय देती है जो उनके समकालीन उपन्यास में भिन्न होने की गवाही देता है।"[111] मन के आत्मबल ने ही उसे स्वावलंबी बना दी है।

'उसकी पंचवटी' की नायिका साध्वी बहुत बडे घर की बेटी और संपन्न घराने की बहु होने के बाद भी अपने पति की उदासीनता की वजह से उसके बडे भाई से गर्भधारण करती है।

बच्चे के पालन की चिन्ता से वह कॉलज में नौकरी करने को बाध्य होती है। उसे मात्र 500 रुपये तनख्वाह मिलते हैं। जिसे देखकर वह सोचती है कि "ऐसे कितने रुपये वह अपने नौकरों को बाँटती रही है किन्तु आज उसका जीवन इन्हीं पाँच सौ से बंधकर रह गया है।"[112] 'उन शाखों पर' उपन्यास में प्रतिमावर्मा वादा करती है "मुझे भी पुराने ज़माने की वह दब्बू औरत समझ रही है। उनकी धौंस सहेगी मेरी जूती अपना कमा रही हूँ, किसी आसरे नहीं बैठी हूँ।"[113]

मृदुला गर्ग के 'वंशज' उपन्यास की विमला अपने शराबी पिता फिलिप को धन कमाकर देती है और उसकी मार भी पाती है। उसका कहना है कि "प्रहारों की धमक थी या फिलिप की चीख-पुकार हरामजादी। बद्जात। मुझे आँख दिखलाती है? रुपये निकालोगी या फोड दूँ आँख।"[114]

कामकाजी नारियों में आत्मसम्मान व आत्मविश्वास का भाव तो भरता है। जब वह बाहर आती है तो उसे लगता है कि अब तक उसके मोल को पहचान ही नहीं पाया। उसने अब तक चार दीवारी की घुटन में जो पशुवत नारकीय जीवन जिया है उसके परे वह एक ताज़गी का अनुभव करती है। 'तिरछी बौछार' की विस्मिता कॉपीराइटर का काम संभालती है तो उसे लगता है - "कौन कहता है घर से बाहर की दुनिया क्रूर है या स्वार्थी है? मैं ने समाज को कुछ दिया तो बदले में दोगुना पाया। कितनी भ्रमक थी स्त्री की यह भावना कि वह घर की चार दीवारी में ही सुरक्षित और वांछित है। उसका मूल्य तो हर कहीं आँका जा सकता है। प्रतिभा उपेक्षित कहीं नहीं है। स्त्री गृहकूप से ज़रा सिर बाहर निकालकर तो देखें। बुद्धि की सीमा और कल्पना का आधार स्वप्न पुरुष हो तो दोनों ही कुण्ठित रह जाती है।"[115]

कामकाजी महिलाओं की स्थिति उस मोमबत्ती की तरह होती है जिसे दो तरफ से जलाया जाता है। एक ओर महिलाओं को घर से बाहर आजीविका के लिए कार्य करना पड़ता है दूसरी और पारिवारिक दायित्व निर्वाह से उसे कोई छूट नहीं मिलती। 'अकेलापलाश' की तहमीना अधिक थकी होकर घर आती है - "सिर में इतना दर्द हो रहा था कि नींद तो क्या खाक आती पर वह मुँह तक कम्बल खींचे पड़ी रहीं। मना बहुत दुःखी लग रहा था और तरह-तरह के विचार उसे घेर रहे थे। कैसे औरतें घर और बाहर दोनों संभाल पाती होगी? उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह अब सब छोड़ देगी। क्या फायदा इसके कारण घर का सुख जाता रहा.... जिन्दगी इस तरह एकदम मशीन हो जायेगी, उसने कहाँ सोचा था?"[116]

'मन न भये दस-बीस' उपन्यास की रेखा की माँ बच्चों के लिए घर, परिवार और नौकरी की दोहरी-तिहरी जिम्मेदारी निभाती है किन्तु उसे क्या मिलता है? बच्चे भी पिता के पक्ष में ही खडे होते हैं। माँ की इस स्थिति पर चिन्तन करते हुए रेखा कहती है - "एक अकेली औरत, जिम्मेदारियों का हिमालय ढोती चली जा रही है और उसे कभी मन भर प्यार भी नहीं दिया। बी हैव टेकन हर फौर ग्रान्टेड। हमारी सारी सहानुभूति पापा के साथ रही है। कभी-कभी लगता है, यह भी पापा की साजिस रही है। आर्थिक असुरक्षा का ऐसा बोझ माँ के मन मस्तिष्क पर डाल दिया कि उनकी ममता के सारे स्रोत सूख गये और बच्चों की सारी गुडविल इन्होंने हडप ली।"[117] यहाँ नारी की स्थिति का विश्लेषण करनेवाले डॉ. रामदरश मिश्र का वक्तव्य बिल्कुल सार्थक है - "नौकरी करते रहने या चाहकर भी छोड़ न पाने की उसकी व्यवस्था दोहरी है। एक ओर घर की आवश्यकताओं द्वारा प्राप्त मज़बूरी है तो दूसरी की अपनी शिक्षा और ज्ञान को प्रयोग में ला सकने में आत्मतोष की प्राप्ति की चाह भी है।"[118]

'एक पति के नोट्स' उपन्यास में भी कविता अपनी अच्छी नौकरी और कैरिअर के बावजूद पति के 'अति आचारों' को प्यार की निशानी समझती है और पुरुष द्वारा की जा रही हिंसा को जायज ठहराती है। स्त्री के अपने पैसे कमाने पर अलका सरावगी का मत इस प्रकार है "ऐ औरत, तू ने जब भी किसी भी कोने में पुरुष से अलग अपना कुछ बनाया है तो तुझे इसकी कीमत देनी पडी है। लेकिन तुम इसे अपने पैसे की, जो कभी तुम्हारा नहीं था और न कभी तुम्हारे हाथ में था, आखिर कितनी कीमत चुकाओगी?"[119]

क्षमाशर्मा के 'परछाई अन्नपूर्ण' में कामकाजी माँ के जीवन संघर्ष की चर्चा है। यहाँ अरविन्दजैन का विचार है कि "कामकाजी महिलाओं के संकट, संघर्ष और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में यह लघु उपन्यास सचमुच एक गंभीर बहस है। शिक्षत, स्वावलंबी और सचेत स्त्री की यह अपने आप से भी बहस है और समाज से भी।"[120]

'ज्वार' उपन्यास में सुषमा कामकाजी नारी है। उसका पति स्वार्थी, आत्मार्केंद्रित एवं भावनाहीन है। वह सुषमा के व्यक्तित्व को, उसकी भावनात्मक अभिरुचि को कोई महत्व नहीं देता है। हर बात पर आशोक की स्पष्ट राय होती थी। सुषमा धीरे-धीरे समझने लगती है कि यह घर अपनी नहीं, अशोक का है। वह अपने ही घर में घुटन महसूस करने लगती है। डॉ. काश्मीरी लाल के मतानुसार, "जिस पति ने अपनी कमाऊ सुशील, एक निष्ठ, विनम्र गुणवती पत्नी से कभी प्यार

की दो बाते नहीं बोली हो, कभी सहानुभूति न जताई हो, कभी उसकी तकलीफ न पूछी हो, कभी उसके दफ्तर के अनुकूल संगति लाने का प्रयास न किया हो उसको स्वाभिमानी नारी कब तक तन और मन सौंप सकती हैं?"[121]

सूर्यबाला के 'सुबह के इंतज़ार' की नायिका श्यामा असाधारण आत्मबल की नायिका है। वह जीवन पर्यन्त संघर्ष कर अपना व अपने भाई का जीवन आगे बढाती है। वह अपने भाई को डॉक्टर बना पाई। जानलेवा बीमारी से ग्रस्त होने पर भी वह दूसरों को इसका पता नहीं चलने देती है तथा जब श्यामा को प्रतीत होता है कि वह नहीं बचेगी तब वह एक पत्र भाई बिलु को लिखती है - "देख, मैं एक सत्य स्वीकार कर रही हूँ कि अंतिम क्षण तक तेरे उज्ज्वल भविष्य का बंदवार मेरी आँखों में रंगा रहेगा। बस कुछ भी महीने और फिर तेरी (मेरी भी कहले) साधना पूर्ण होगी। वह कितनी बडी उपलब्धि होगी बिलु सोच ज़रा, जानती हूँ यह उपलब्धि बहुत दिनों तक तुझे मेरे अभाव के अहसास में डुबोती रहेगी।"[122] असाधारण स्त्री श्यामा जो अपनों द्वारा ठुकराई गई, गरीबी एवं बदनामी के गर्त में पड़कर भी आत्मबल के द्वारा ऊपर उठी और अपने परिवार को जीवित रख सकी।

स्त्री किन-किन विपरीत परिस्थितियों में अपने लिए यह स्वावलंबन ढूँढ रही है, इस प्रश्न का उत्तर 'आवाँ' की सुनन्दा देती है - "फिर मैं आत्मनिर्भर हूँ दीदी। अपनी बच्ची की परवरिश स्वयं कर सकने में समर्थ। मेरा मातृत्व ब्याह के टुच्चे प्रमाण पत्र का मुहताज नहीं। असुविधा है तो मात्र इतनी भर कि माँ स्वयं काम पर जायेगी या मेरी बच्ची की देखभाल करेगी।"[123]

'मैं और मैं' उपन्यास में मृदुला जी ने कामकाजी महिला किस प्रकार के पुरुषों को अपने चारों ओर पाती है इसका चित्रण किया है। कौशलकुमार माधवी से लेतरानी बातें करता है। उसकी चोट माधवी के उस कोने पर पड़ती है कि वह हर बार कौशल के हाथों धोखा खाती है। कौशल अपना शतरंज पर उसको गोटी बनाकर चलाता है और माधवी भी उसकी चाल में आ जाती है।

कामकाजी नारी को अपनी संस्था में ही पीड़ाएँ मिलती है। 'मीनारे' उपन्यास में प्रेमा को महाविद्यालय में 'प्राचार्य' की नियुक्ति मिली। लेकिन वहाँ चल रहे अत्याचार एवं भ्रष्टाचार ने उनको बहुत अधिक दर्द दिया। जब वह अपने पद से त्यागपत्र देने की बात सोचती है तब उसकी विवशता है "क्या करना है मुझे इस कुर्सी का, जहाँ बैठकर छोटी से छोटी बात के लिए इन

मतलबी लोगों पर मुझे आश्रित रहना पड़े। जहाँ अपनी मर्जी से मैं कलम की नोंक से एक छोटा सा आदेश तक नहीं लिख सकती। दस रुपए की बढोत्तरी क्या थी, एक छोटा-सा आदेश ही तो था, जिसपर वे साहब इतना गुर्रा रहे हैं, मन में इतनी बडी गाँठ बाँधकर बैठ गए हैं.....। ठीक हो जाएगा-ठीक तो मैं उन्हें खुद करूँगी। क्षणांश में ही उन्होंने एक बड़ा निश्चय ले लिया था।"[124] नौकरी के क्षेत्र में कार्यरत अनेक नारियाँ इसी दर्द को झेलनेवाली हैं।

5.6 विद्रोहिणी नारी

पुरुषवर्चस्वता व पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था की तह में भारतीय नारी सामाजिक दृष्टि से अपमानित, प्रताड़ित, एवं शोषित रही है। आज शैक्षिक और आर्थिकदृष्टि से नारी आत्मनिर्भर होने के कारण उसे अपनी परंपरागत रूढीग्रस्त मानसिकता से उबरना होगा। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या तक' में यह सीखा दिया है कि नारी केवल रोने की वस्तु नहीं है। उनकी राय में "मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूँद आँसु में स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाए? क्यों? किसलिए? रोना और केवल रोना आँसुओं का समन्दर आँसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम।"[125] लेखिका जी ने यहाँ स्त्री अस्मिता की तलाश की है।

प्राचीनकाल से ही दबी कुचली नारी आज विद्रोहिणी के स्तर तक आ चुकी है। नारी आज पुरुष के समकक्ष अधिकार चाहती है। उसके हृदय में आज अपनी दमित शक्ति एवं उपेक्षित सत्ता के प्रति आक्रोश की स्थिति तो निश्चित रूप में व्याप्त है। समकालीन समाज में कई लेखिकाओं ने अपने साहित्य में विद्रोहिणी नारी का पर्दाफाश किया है। इस संबन्ध में जगदीश्वर चतुर्वेदी का अभिमत विचारणीय है - "उपेक्षा, अज्ञातवास एवं दमन की मार इतनी गहरी होती है कि स्त्री अपनी पहचान, अधिकार और निजी सत्ता ही भूल गयी या भूला दी गयी। सामाजिक, साहित्यिक इतिहास से पुंसवादी इतिहास सृष्टि ने स्त्री को खदेड दिया यही वजह है कि इतिहासग्रन्थों में स्त्री की सृजनात्मक एवं संघर्षशील इमेज का उल्लेख तक नहीं मिलता, हिन्दी की स्त्री कथालेखिकाओं ने स्त्री जीवन के प्रश्नों की अवस्थाएँ एवं द्वन्द्वों को अपना प्रमुख विषय बनाया।"[126] समकालीन उपन्यास लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्री का यह रूप हम देख सकते हैं।

समकालीन समाज में नारी अधिक सचेत होकर अपने ऊपर होनेवाले शोषण को मिटाने के लिए अधिक विद्रोही बन जाती है। चित्रा मुद्गल के 'आवाँ' उपन्यास में सुनन्दा, स्मिता, निर्मला और हर्षा ऐसे नारीपात्र हैं जो नारी की अधिकार प्राप्ति के लिए पैरवी करनेवाले हैं। सुनन्दा एक संघर्षशील नारी है, वह सुहैल से प्रेम करती है और उससे गर्भवती भी हो जाती है। लेकिन वह अपना पेट गिराने को राजी नहीं। सुहैल उससे शादी करने को तैयार है परन्तु उसकी एक ही शर्त है कि सुनन्दा को इस्लाम धर्म स्वीकार करना होगा और अपना नाम भी बदलना होगा। सुनन्दा हिन्दू होकर मुसलमान से ब्याह करने को राजी थी क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम एकता को धर्म से ऊपर देखना चाह रही थी। कामकाजी सुनन्दा ने प्रसवहेतु आवेदनपत्र दिया तो अविवाहित होने के कारण अवकाश देने को कम्पनी तैयार नहीं थी। यहाँ सुनन्दा महिलाओं के अधिकारों के प्रति सजग होकर कहती है - "सुविधा का प्रावधान गर्भवती स्त्री और बच्चे को लेकर हैं, न कि कुँआरी माँ के विशेषणों के लिए। कुँआरी माँ क्या ब्याहता माँ के समान ही जचकी के घोर कष्टों से होकर नहीं गुज़रती? उसे आराम की ज़रूरत नहीं होती? माँ बनना किसीके निजी मामले की बजाय कंपनी का मामला कैसे हो गया? फिर मैं आत्मनिर्भर हूँ दीदी। अपनी बच्ची की परिवरिश स्वयं कर सकने में समर्थ। मेरा मातृत्व ब्याह के टुच्चे प्रमाणपत्र का मोहताज नहीं।"[127] सुनन्दा और सुहैल की शादी में अन्धविश्वास और कट्टरता रोड़ा बन जाती है। सुनन्दा को न्याय तो नहीं मिल पाता बल्कि उसकी हत्या कर दी जाती है। 'जागोरी' की नेता विमलाबाई सुनन्दा की मय्यत को कंधा देने आये हुए अन्नासाहब और पवार को धक्के से अलग करते हुए कहती है, "कूपमण्डूक पुरुषों में हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र सम्मत है, क्या नहीं? निर्दोष औरत की नृशंस हत्या करना शास्त्र सम्मत? मैं कन्धा किसी औरत की मय्यत को नहीं दे रही, उस स्त्री चेतना को दे रही हूँ जिसका गला घोंटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई।"[128] यहाँ नारी विद्रोही बनकर अपनी अस्तित्व की पहचान खोज रही है। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रा मुद्गल जी ने विद्रोहिणी नारी स्मिता का चित्रण भी किया है जो नमिता की सहेली है। स्मिता की बडी बहन पर पिता के द्वारा हुए बलात्कार के हेतु वह पागलपन की स्थिति में पहूँचती है तो स्मिता संपूर्ण पुरुषवर्ग के प्रति क्रुद्धित होकर संकल्प करती है कि, "साअले, मर्दों की उनकी मर्दई का सबक न सिखाया तो....।"[129] वह निर्लज्ज और शराबी पिता को सीढियों से धक्का देकर उनका प्राणान्त कर देती है। जिसमें स्त्री शक्ति परिलक्षित होती है। अन्नासाहब द्वारा नमिता के यौन उत्पीडन को सुनकर वह कहती है, "मैं तेरी जगह होती तो साले बुड्ढे से खूब 'खो-खो' खोलती। चल करवा ले तू जो

करवाता है। हाथ भर ही तो डिटोल से धोने होंगे। धो लेंगे। मगर हर बार की 'खो' पर निकाल दस हज़ार की गड्डी।"[130] यहाँ स्मिता का विद्रोही रूप देख सकते हैं।

निरुपमा सेवती ने 'पतझड की आवाज' में शोषित स्त्रियों के मुँह से विद्रोह का स्वर सुनाया है। विद्रोही सुनीला विवाह एवं सेक्स के संबन्ध में अपना मत व्यक्त करती है - "मैं तो ऐसों को लिफ्ट नहीं देती कभी भी। अनुभा, तुम भी सुन लो, इस मर्द जान के साथ तबी सोओ, अगर माल हासिल हो या 'पोज़िशन' हासिल हो या फिर शादी करता हो साला। वरना मज़े के लिए तो क्या, प्यार की खातिर भी सो जाओ तो ये लोग समझने क्या है? रंडी ही। रंडी को रंडी नहीं समझेंगे। उससे तो डर भी जायेंगे कभी पर.....।"[131] मर्दों के अत्याचार एवं धोखे को व्यक्त करने में सुनीला हिचकती नहीं।

कभी-कभी नारीजीवन में नैतिकता के ह्रास होने पर वह विद्रोही बन जाती है। चन्द्रकान्ता के 'अर्थतार' की नायिका को भरे-पूरे परिवार में भी अकेलापन एवं अजनबीपन से युक्त ज़िन्दगी जीनी पडी। वह पति के आचरण में निमग्न होकर सति-सावित्री बनना नहीं चाहती, बल्कि स्वतंत्र होकर अपने अस्तित्व की खोज करने लगी। डॉ. उषायादव के अनुसार "अर्थतार 'नारीजीवन से जुडे तमाम नैतिकमूल्यों को नई अर्थवत्ता प्रदान करने का दिशा संकेत है।"[132] चन्द्रकान्ता के 'अन्तिमसाक्ष्य' उपन्यास में भी नारी अपनी क्षमता को पहचानकर विद्रोह करने का प्रण लेती है।

मणिकामोहिनी के 'पारु ने कहा था' उपन्यास की नायिका समान अधिकार चाहनेवाली है। वह कहती है कि "एक बार मैं ने समान अधिकारों, समान कर्तव्यों की बात कही थी तो वे बोले किसी भी तरह की समानता में उनको विश्वास नहीं। स्त्री को हर प्रकार का त्याग करना होता है..... वे औरत को पाँव की जूती समझते थे... उन्हें अफसोस है कि उन्हें यह जूती कभी फिट नहीं आयी, हमेशा चुभती रही, उनमें संस्कारगत सामन्तवादी पुरुष का स्वर बोलता था। स्त्री-पुरुष के संबन्ध में उनका एकांगी मत मेरे विचारों की दीवारों को ढहा देता था।"[133] इस संबन्ध में दिनेश द्विवेदी कहते हैं - 'मणिकामोहिनी के लेखन में समस्याओं के समन्दर से उफनते हुए आपसी संबन्धों के जहाँ एक ओर कथानक हैं वहाँ दूसरी ओर एक विशेष तरीके की बोल्डनेस है उनकी शैली में। ओढी हुई 'बोल्डनेस' नहीं बल्कि घटनाओं के साथ अपने आप पैदा हो गई परिस्थितियों की अभिव्यक्ति और संत्रासों से आई हुई बेबाकी है। मणिकामोहिनी के लिए औरत 'बेचारी' नहीं

है बल्कि उसे अपने वजूद की तलाश करने का अधिकार है।"[134] पुरुषों के साथ समानता से जीने की लालसा स्त्री में विद्यमान है।

राजीसेठ ने 'निष्कवच' उपन्यास में नीरा नामक लड़की के स्वतंत्र विचारों एवं व्यक्तित्व को चित्रित किया है। विशाल की माँ ने बसु को नीरा से विवाह करने का प्रस्ताव दिया तो उसने बताया कि "शादी कर लूँ मैं? उस बच्ची से? उसमें बराबर की औरत ढूँढने बैठू?"[135] इतना बडा दुःख, इससे बडी घुटन और क्या हो सकती है नीरा केलिए। फिर नीरा की शादी रमण से तय की गयी तो बासु उदास होता है। विशाल बासु का समाचार देने पर नीरा ने कहा - "भूल जायेगा। जैसे मैं भूलती जा रही हूँ तेज़ी से।"[136] इसप्रकार बासु का जीवन नीरा से निष्कवच हो जाता है। नीरा पुरानी नारी के कवच को उतार फेंककर आधुनिक एवं मज़बूत नारी बन जाती है। डॉ. मधुसन्धु के अनुसार "नीरा मध्यवर्ग से अपनी परिभाषा पाती दब्बू दलित लचीली लड़की नहीं है बल्कि अपनी असुरक्षित जीवनदशाओं के चलते अपनी सुरक्षा के लिए उत्तरोत्तर सचेत और निर्णायक होती जाती एक आत्म सजग लड़की है। उसके चित्रण में मध्यवर्ग परिभाषित होता है न नारीवाद ही। वह नीरा है एक भग्न परिवार की उपज, उदग्र ऊर्जा से भरी, स्वतंत्रता जो अपनी पसन्द-नापसन्द अच्छी तरह जानती है और उसे उपार्जित कर जाने का मादा भी रखती है।"[137]

पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन के पतन की सीमारेखा देखकर औरत अधिक चकित एवं परेशान होकर अपने फैसले में अटल रहती है। 'शाल्मली' में नरेश अनैतिक संबन्धों में कूदते देखकर शाल्मली एकदम ज़ोर आवाज़ देती है - "फिर सुनो, नरेश मुझे और उसके बीच एक को चुनने की स्वतंत्रता तुम्हें देती हूँ। उसके साथ रहकर तुम्हें अपना जीवन सार्थक लगता है, तो.... यह मेरा निर्णय है और तुम अपने को स्वतंत्र समझो।"[138] यहाँ शाल्मली यह साबित करना चाहती है कि वह गूँगी, या बेकारी नहीं है, उसे भी अपने फैसले लेने का ज़िक्र भी है। पति-पत्नी संबन्ध में तनाव आने पर तलाक की समस्या आती है। लेकिन शाल्मली तलाक संबन्धी व्यवस्था एवं पुरुष के अनैतिक संबन्धों की कट्टर विरोधी होकर बताती है - "औरत की पास दो ही अभिव्यक्तियाँ हैं सिर झुक देना या समस्या को अधूरा छोड़ सिर कटा लेना। मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर, न तोड़ने पर न आत्महत्या पर है, न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने में है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी। अधिकार पाना यानी घर निकाला नहीं और घर बना रहने का अर्थ 'सम्मान' को कुचल फेंकना नहीं है। यह जो

हमारे मन मस्तिष्क में अति का भूत सवार हो गया है, वही जीवन के लिए विष समान है।"[139] शाल्मली के अनुसार भारतीय संबन्धों को मशीनी के समान तोड़ना सही काम नहीं है।

प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में प्रिया बचपन से ही घरवालों से उपेक्षित थी और शादी के बाद करोडों की जायदाद के पति से भी। बडे भाई की धोखा एवं पति नरेन्द्र के बहशी व्यवहार ने उसे विद्रोही बना दिया। "प्रिया को जन्म से ही विद्रोहिणी बनाने के मूल में अनेक यातनाओं का इतिहास है। उसका शैशव अनवरत बलात्कारों की कड़ी है। सगे बड़े भाई और परिवार के एकमात्र संरक्षक द्वारा साढ़े नौ वर्षीय बहन का बार-बार बलात्कार प्रिया के अन्दर घृणा के उफान ले आता है। यह ऐसा राक्षस भाई है, जिसने घर को ही कोठी बना डाला है। जैसे-जैसे प्रिया बड़ी होती है, उसका मन विद्रोह और घृणा से भरता जाता है।"[140] सब भाई-बहनों में बद्सूरत होने के कारण प्रिया की माँ को यह चिन्ता सताती थी कि उसके साथ कौन शादी करेगा? बार-बार की चर्चा होने पर विद्रोहिणी प्रिया ने चिल्लाया - "न ले जाए कम्बख्त, कोई न ले जाए। मुझे किसी की ज़रूरत नहीं। अब मैं विद्रोही होती जा रही थी।"[141] लेखिका ने प्रिया को छिन्नमस्ता के रूप में प्रस्तुत किया है। पौराणिक कोश के अनुसार 'छिन्नमस्ता' दस महा विधाओं में छठी देवी प्रचण्डिका है। प्रभा खेतान का कहना है - "साधारण मानवीय रूप में मेरी नायिका प्रिया अपनी व्यथा को कहती है, और हमें कहते-कहते अपने एक त्रासद अतीत से उबारती है। समाज के अनुसार उसे मर जाना चाहिए था, टूट जाना चाहिए था। उसका सर तो पहले ही कट चुका था, लेकिन फिर भी वह छिन्नमस्ता देवी अपने वक्त से, परिवेश से, और अंततः अपने पति से लड़ती हुई अपनी ज़िन्दगी बनाती है।"[142] प्रस्तुत उपन्यास में प्रिया जीवनसंघर्ष में हारती नहीं है, भारतीय परंपरागत स्त्री के समान आँसु बहाती नहीं बैठती बल्कि वह विद्रोही नारी निश्चय करती है कि "नहीं, मुझे अम्मा की तरह नहीं होना, कभी नहीं। भाभी की घुटनभरी ज़िन्दगी की नियति मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। मैं जीवन को आँसुओं में नहीं ढा सकती।"[143] प्रिया नारीत्व की आँसु भरी नियति स्वीकारना बहुत बडा अपराध मानती है। प्रस्तुत उपन्यास की जूडी भी ज़िन्दगी की चुनौतियों को सधैर्य सामना करने के लिए तैयार है। उसका मत है कि "हम समाज से क्यों भयभीत रहे। समाज नाम की भीड़ को समझना आसान नहीं है। यह समाज वही है जो व्यवस्था को तोड़नेवाली स्त्री को सौकोडे लगाता है। वही समाज पुरुष को मंच पर क्रान्तिकारी कहकर मान देता है। औरत हर तरह मरती है लेकिन रोती हुई औरत मुझे अच्छी नहीं लगती। मुझे औरत की

इस निष्क्रियता पर झझलाहट होती है। यह क्या घुट-घुटकर मरना।"[144] प्रिया और जूडी जैसी नारियों के सहारे लेखिका ने पुरुषवर्चस्वता के विरुद्ध नारी को सचेत होने का सन्देश दिया है।

प्रभा खेतान के 'पीली आँधी' की सोमा ने भी विद्रोहिणी होकर अपने पति से संबन्ध विच्छेद किया। हरिकृष्णराय के अनुसार, "सोमा जैसी स्त्री जो पन्द्रह वर्षों तक अपने पति के द्वारा प्रताडित, अपमानित और लांछित होने के बाद बगावत पर उतर आती है और 'पति परमेश्वर' से हमेशा के लिए संबन्ध विच्छेद कर लेती है।"[145] शिक्षित व आत्मनिर्भर नारी घुटन को सहने के लिए तैयार नहीं है।

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम्' की प्रेम आधुनिक विचारों की नारी है जो विधवा होने पर परंपरागत विधवा जीवन को चुनौती देकर अपने जीजा रतनयादव के साथ भाग जाती है क्योंकि वह विधवाजीवन के होमकुण्ड में अपने को जलाने के लिए तैयार नहीं थी। प्रेम की बेटी मन्दाकिनी बचपन से ही दृढ़बद्ध होकर लक्ष्य की ओर प्रयाण करनेवाली नारी थी जो कालान्तर में स्त्री संघटन की शक्ति बनकर भ्रष्टव्यवस्था के साथ संघर्ष करती है। मन्दाकिनी के सक्षम व्यक्तित्व के संबन्ध में डॉ. गोपालदास लिखते हैं - "मन्दाकिनी वास्तविक अर्थों में एक जुझारु युवती व नारी अस्मिता की उद्घोषक है। जो केवल परिवार और समाज द्वारा अपने लिए निर्मित बन्धनों को नहीं तोड़ती वरन् उस शोषण के विरुद्ध भी तनकर खड़ी होती है, जो आज के नेताओं और माफिया ठेकेदार द्वारा आदिवासियों और ग्रामीणों पर कहर के रूप में बरसा जा रहा है।"[146]

'चाक' उपन्यास में विधवा रेशम सास की गालियों के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द कर उसकी फुफेरी बहन के साथ सधैर्य आगे बढ़ती है। अशिक्षित गाँव की सुशिक्षित बहु सारंगनैनी भी स्त्री शक्ति का प्रतीक है। रेशम की हत्या छल-कपट से की जाती है तो वह क्रुद्ध होकर महाभारत की द्रौपदी के समान प्रतिज्ञा लेती है कि "जब तब हत्यारे को हथकडी नहीं लग जाती तब तक अपने बाल नहीं समेटेगी।"[147] अन्ततः वह हत्यारे को हथकडी लगवाने में सफल होती है।

सामाजिक यथार्थता की कठोरता के सामने नारी का विद्रोहीरूप पद्मा सचदेव के 'अब न तो बनेगी देहरी' उपन्यास में भी देख सकते हैं। इस उपन्यास में विधवा रेवती की रक्षा महन्ता गिरिबाबा ने की। लेकिन रेवती गर्भवती बनने पर शर्मिन्दा होकर महन्ता ने समाधि ले ली। छोटी उम्र में ही अकेली हो उठी रेवती समाज से बदला लेने के लिए कटिबद्ध हो उठी और आगे फिर

भविष्य में देहरी न बनने देने के लिए बचनबद्ध भी। समाधि पर माथा टेकते हुए वह कहती है, "बुआ मैं ज़िन्दा रहने के लिए निकली हूँ, मरूँगी नहीं। मैं भी जिऊँगी बुआ, मैं जिऊँगी। अब हमारे खानदान में कभी किसी की देहरी न बनेगी। अब न बनेगी देहरी बुआ, कभी न बनेगी।"[148] रेवती की बुआ भी विजातीय लड़के से प्यार करती थी, सामाजिक त्रासदियों से बचने हेतु उस लड़के ने भी आत्महत्या कर ली थी। सामाजिक यथार्थता का सामना करते हुए बुआ ने भी विद्रोही होकर जीने का पक्का इरादा ले लिया।

चित्रा मुद्गल के 'एक ज़मीन अपनी' में श्रमिकवर्ग की समस्या एवं स्त्री शोषण की समस्याओं का चित्रण है, साथ ही उसके विरुद्ध नारी का विद्रोही रूप भी अंकित किया गया है। इस उपन्यास में अंकिता तनतोड़ मेहनत करनेवाली युवती थी किन्तु वह अपने शरीर को अपनी उन्नती का आधार नहीं मानती। ऐसी नौबत आने पर वह अपना विद्रोही रूप दर्शाकर अन्याय के विरुद्ध खडी हो जाती है और मज़बूर लड़कियों की मज़बूरी का फायदा उठानेवाले अन्यायी मालिक को खरी-खोटी सुनाने में भी न हिचकती। विज्ञापन के क्षेत्र में हुई अश्लीलता के विरुद्ध भी अंकिता आवाज़ उठाती है कि "मैं अश्लीलता का आश्रय लेकर उत्पाद बेचने के विरुद्ध हूँ।"[149] अंकिता पुरुष के संबन्धों की नई नैतिकता को ज़मीन देने का संकल्प लेकर अपना विचार प्रकट करती है - "मैं स्त्री और पुरुष की समान साझी की पक्षधर हूँ, किन्तु उसके अंहवादी शोषक स्वरूप की नहीं।.... स्त्री को घर-परिवार और समाज के आतंक से आतंकित होकर, खोखली दीवारों से सिर पटक-पटककर प्राण देने की बजाय बाहर निकलने का सहारा जुटा, आत्मनिर्भर हो, नए सिरे से जीवन जीने के तरीकों को खोजना चाहिए।"[150] अंकिता की सहेली नीता भी अपनी नैतिकता के मानविन्द स्वयं तयकर अंकिता से कहती है - "तुम कगार पर खडी हुई, पानी में उतरने से नहीं कतरा रही कि पानी की गहराई से भयाक्रान्त हो, तुम मगरमच्छों से आशंकित हो मगर कूदो पानी में।"[151] उपन्यास में विमलाबेन भी नारी चेतना से संपन्न होकर कहती है - "कूपमंडूक पुरुषों से हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र सम्मत है, क्या नहीं? निर्दोष स्त्री की हत्या करना शास्त्रसम्मत है पाटिला।"[152] यहाँ स्त्री चेतना सिर उठते ही साँप का फन हो उठती है। गिरिराज किशोर ने 'एक ज़मीन अपनी' उपन्यास के बारे में इसप्रकार कहा है - "चित्रामुद्गल के इस उपन्यास को भले ही ग्लैमर और विज्ञापन की दुनिया से जोड़ा जाए, किन्तु मुख्यतः यह भारतीय स्त्री की मानसिकता और उसके बाहरी जीवन के अंतर्द्वन्द्व का उपन्यास है।

खासतौर से अंकिता की संपूर्ण बुनावट भारतीय नारी की सोच के चारों तरफ बुनी गई है।"[153] यहाँ अंकिता आदर्शनारी के रूप में सामाजिक संस्कार को बढ़ावा देने का परिश्रम करती है।

'कठगुलाब' की स्मिता अपने जीजा द्वारा बलात्कार से विक्षुब्ध हो जाती है। वह माँ दुर्गा की शक्ति का वरण कर निरन्तर उस राक्षस के विरुद्ध प्रतिशोध की आग में जलती रहती है। असीमा नारी अस्मिता की प्रतिमूर्ति है और क्रान्तिकारी विचारों की स्वामिनी है। उसकी दृष्टि में नारी अबला नहीं, सबला है। कुशल परिश्रमी असीमा का दृष्टिकोण है कि - "मर्दों के मुकाबले औरतें ज़्यादा अनाज पैदा करती हैं.... जब तक औरत यह समझती रहेगी कि मर्द ही असली कमाऊ होता है, उसकी कमाई को अनदेखा किया जाता रहेगा। हर औरत को मार-पीट करना आना चाहिए तभी मर्दों को बस में रख सकती है।"[154] असीमा में पुरुष के प्रति विद्रोह की भावना और नारी के अपने अस्तित्व के प्रति सुरक्षा का भाव तभी से पैदा हुआ जब उसके पिता उसकी माँ को छोड़कर दूसरी नारी के साथ रहने लगा। अपने पिता की वजह से वह पुरुषमेधावी व्यक्तित्व के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है। "अब आए तो कोई मर्द मेरी सीमा में, टाँग तोड़कर पूँछ बना दूँ। मुझे मर्दों से नफरत है। सब एक-से-एक बढ़कर हरामी होती है। सबसे बडा हरामी था, मेरा बाप। लंबा, तगड़ा, खूबसूरत हरामी।"[155] असीमा मानती है कि नारी को अपनी रक्षा स्वयं करनी चाहिए। इसलिए वह कराटे सीखती है। 'ब्लाक बल्ट' पाना उसके लिए 'कराटे' में सिद्धहस्त होना ही नहीं, मोक्षप्राप्ति की तरह था। जब नर्मदा पर प्रिन्सिपल के पति की कुदृष्टि पडी तो वह असीम के आसरे में आयी तब असीमा ने उस हरामी की धुलाई कर दी थी। जब नर्मदा का जीजा उसे मिलने असीमा के यहाँ आया तब असीमा की शक्ति से प्रभावित नर्मदा ने भी शेरनी के समान दहाड़ते हुए चीखा - "फिर कभी इस घर में आने की हिम्मत की तो दोनों टाँगे तोड़ के सड़क पर फेंक दूँगी। भडुवे, जा अपनी बीबी की पल्लू में जाके सो। मैं तेरी रखेल न थी, तू मेरा रखैल था। कमा-कमा के तुझे खिलाया मुस्टंडे, इसलिए कि तू और तेरी बीबी मिलके मेरे हक मारो। जा, नामर्द समझ के अपना हिस्सा माफ किया। पर याद रख, एकदिन आके वसूल कर लूँगी।"[156] और वह उसके सामने चाकू खोलकर खड़ी हुई और वह भाग गया।

'कठगुलाब' की मरियान भी नारी सशक्तीकरण का प्रतीक है। उसके द्वारा इकट्ठायी गयी सामग्री से उसके पति ने उपन्यास लिखकर प्रकाशित किया किन्तु लेखक के रूप में मरियान का नाम न होने पर वह विद्रोही नारी अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए चुनौती देती हुई पति से

कहती है - "कपटी धूर्त, नामर्द, बास्टर्ड, पूरा-का पूरा मेरा जरनल टीपकर छपवा लिया। यह सरासर चोरी है। कमीने, मैं कभी तुम्हें माफ नहीं करूँगी, इसका बदला लेकर रहूँगी,.... यू मन ऑफ अ बिच यू इंपोटेंड बास्टर्ड।.... समझते क्या हो.... मैं तुम्हें छोड़ती नहीं। प्लेजियरिजम के चार्ज पर जेल भिजवाकर रहूँगी। इस उपन्यास की बिक्री तभी होगी। जब इसपर मेरा नाम रहेगा, समझे।"[157] मरियान का यह विरोध केवल शाब्दिक नहीं था। 'कठगुलाब' की सुमा नारी आन्दोलनकारियों की अग्रणी है, उसी के अनुसार नारी सशक्तीकरण के लिए सबसे पहले पुरुषों से हस्तांतरित होकर सत्ता स्त्रियों के हाथों में आनी चाहिए। इसी उपन्यास की उल्लेखित विद्रोहिणी नारियों ने अन्य नारियों को सक्षम बनाने के लिए 'कुटुंब' नामक एक सहकारी संस्था की स्थापना की। किन्तु आखिर समाज की मनोवृत्ति से संघर्ष भी करना पड़ा। मृदुलागर्ग यही सिद्ध करना चाहती है कि अपनी शक्ति पर विश्वास रखनेवाली नारी ही आत्मसम्मान के साथ जीवन बिता सकती है।

अब नारी केवल पुरुष के हाथों गढी हुई मिट्टी की बेजान मूरत नहीं है। केवल पति की वासनापूर्ती का साधन बने रहने में वह अपना अपमान समझती है क्योंकि वह अपनी इच्छाओं और अपने अधिकारों की पूर्ती के संदर्भ में ही पति को स्वीकारती है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा का कथन है "जिस आदमी को दो बातें करने तक की फुर्सत नहीं, उससे कैसा लगाव? जो रिश्ता रात के अन्धेरे में जन्म लेता है और चन्द, घण्टे कायम रहकर, दिन के उजाले के साथ खत्म हो जाता है, उसे तोड़ने में कैसा संकोच?"[158] यहाँ डॉ. हरवंशकौर का नारी संबन्धी कथन बिल्कुल सार्थक लगता है "यह 'पाषाण प्रतिमा है - जिसमें तूफानों से टकराने की हिम्मत है, समस्याओं से जूझने की ताकत है, विपरीत स्थितियों से मुकाबला करने का हौंसला है। नारी की यह नई तस्वीर बड़ी जानदार है, उसका व्यक्तित्व बडा शानदार है। समाज में उसकी पृथक पहचान है। पवित्रता और नैतिकता के उसके अपने मानदण्ड हैं।"[159] यहाँ यह स्पष्ट है कि आज की नारी अपनी जीवन नौका की पतवार स्वयं खो रही है।

कृष्णा सोबती के 'दिलोदानिश' के कृपानारायण की पत्नी कुटुम्बप्यारी भारतीय परंपरागत नारी का प्रतिरूप है किन्तु उसे जब यह ज्ञात होता है कि उसके पति को महकबानों से संबन्ध है और उससे दो सन्तानें भी हैं तब वह सौत्तियाडाह सी जलने लगती है और अपने पति से बदला लेना चाहती है। डॉ. निर्मला जैन के शब्दों में "खानदानी समझी जानेवाली कुटुम्ब प्यारी अपनी

जबान, बेमौके उपस्थिति, किसी जेवर के लिए जिद और फिर असहयोग से या फिर ज़्यादा से ज़्यादा चोरी - छिपे भैरोबाबा की हम बिस्तर होकर प्रतिशोध ले लेती है।"[160] अन्याय और अत्याचार के विरोध में आवाज़ उठानेवाली कुटुम्बप्यारी वास्तव में दबंग चरित्र है।

चन्द्रकान्ता का 'अपने अपने कोणार्क' की कुनी पी.एच.डी उपाधि प्राप्त प्रोफसर है। सुशिक्षित कुनी अपने लिए आये विवाह का विरोध करने को भी न हिचकती है क्योंकि सारे के सारे विवाह निर्णय, जन्मकुण्डली, खानदान में खोट और दहेज जैसी समस्याओं में लटक रहे थे। उसके लिए शादी का सौदा तन के व्यापार के लिए सामाजिक ठप्पा मात्र लग गया तो उसने आजन्म अविवाहित रहकर जीने का निर्णय लिया और घर का दायित्व उसका आखिरी मंजिल हो गया। नारी सशक्तीकरण हेतु कुनी ने आदिवासियों के बीच उनके उद्धार के लिए काम किया। यहाँ कुनी चुनौती भर शब्दों में घोषणा करती है कि "मेरे भाइयों को मेरे व्यक्तिगत मामलों में बोलने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि आज तक उन्होंने मेरेलिए कभी कोई चिन्ता नहीं की। आज मैं भी अपनी ज़िन्दगी के अहम् फैसले में उनकी राय नहीं लूँगी मेरे भीतर फन-काढ़े साँप सी जिद फुफकारती रही। मेरी बरदाश्त की हदें टूट गई।"[161] इसप्रकार कुनी के माध्यम से समसामयिक चेतित नारी का चित्रण किया गया है।

आधुनिक नारी पुरुष वर्चस्ववाले कार्यक्षेत्रों में निरन्तर परिश्रम कर अपनी उन्नती करना चाहती है। 'हर दिन इतिहास' की वर्तिका जिस महाविद्यालय में कार्यरत है वहाँ तन-मन से कार्य करती है। फलतः प्राचार्य की प्रशंसा का पात्र भी बन जाती है। वहाँ उसका परिचय शान्तनु से होता है दोनों आपस में आकर्षित भी होते हैं परन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि शान्तनु विवाहित है तब उसका मन प्रक्षोभित हो जाता है और वह दृढनिश्चय कर लेती है कि पुरुषप्रवृत्ति पर ज़रूर लिखेगी - "सोचा आज मन भटकर गालियाँ लिखेगी, सिर्फ गालियाँ ही नहीं, एक पूरा चिट्ठा, उलाहनों और आक्षेपों का बड़ा पोथा तैयार करेगी। नहीं, नहीं, वह शन्तनु नाम के उस छली इन्सान का पूरा कच्चा चिट्ठा खोलेगी, जिससे लोग उसके कारनामों को समझे, उससे नफरत करें, उसपर थू-थू बरसाये।"[162] लेखिका ने वर्तिका के माध्यम से ऐसी नारी का चित्रण किया है जो वर्तिका के समान अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों के बीच स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश दे रही है। जीवन की प्रौढावस्था में वह डॉ. सिन्हा के जीवन की, पुरुषार्थ की पुरुषार्थनी हो जाती है।

'समय सरगम' की आरण्या नारी स्वतंत्रता की प्रबल पक्षधर है। अतः वह अकेली होकर भी आत्मनिर्भर व आस्थावान बनकर सधैर्य परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई जीवनयापन करती है। जीवन के हर क्षण में खुलकर आनन्द लेती है। जनसामान्य के प्रति उसके मन में भारी संवेदना जागृत हुई है। उसकी सोच में नारी सहृदयता और भारत के भविष्य की चिन्ता है। लेखिका होने के नाते समाज और परिवार में व्याप्त अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध समय-समय पर वह आवाज़ उठाती है।

समकालीन महिला लेखिकाओं ने आर्थिक सक्षमीकरण की दृष्टि से भी अपने नारी पात्रों को विश्लेषित किया है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया आर्थिक दृष्टि से सक्षम और आत्मनिर्भर बन गयी क्योंकि उसने पहले ही यह अनुभव किया था कि नारी तभी स्वतंत्र हो सकती है जब वह आर्थिक व्यवसाय प्रारंभ करती है। इसीसे उसे जीवन का मकसद मिल गया है। उसीके शब्दों में "आज मेरा व्यवसाय मेरी आयटेंटिटी है। यह आये दिन विदेशों की उड़ान.... यह मेरी ज़िन्दगी के कैनवास को बड़ा करती है। नित आये नये लोगों से मिलना-जुलना जीवन के कार्य जगत को समझना। मुझे ज़िन्दगी उद्देश्यहीन नहीं लगती।"[163] प्रिया का पति नरेन्द्र नारी की आर्थिक स्वतंत्रता का विरोधी है। प्रिया की खुशी इस बात में है कि आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने के कारण करोडपति पति के सामने हाथ पसारने को विवश नहीं होती। जो भी हो पति-पत्नी का आर्थिक संघर्ष सीमा को तोड देता है। नरेन्द्र किसी भी तरीका के ज़रिए पत्नी के प्रयत्न को चौपट करना चाहता है तो वह वीरांगना चुनौती देती हुई कहती है कि "यदि वह उसके व्यापार को नष्ट करने का प्रयास करेगा तो वह भी उसके इनकमटैक्स, सेल टैक्स, एकसाइज़ टैक्स आदि बरवडों का पर्दाफाश कर देगी।"[164] प्रिया की आर्थिक सफलता पर व्यंग्य की वाणी छेडनेवाले पति से वह मुँह बन्द जवाब देती है। निरन्तर शोषित प्रिया घर और सेक्स के मोर्चों पर हो रहे शोषण के विरुद्ध निरन्तर चुनौती बनकर उठ खडी होती है। अरविन्द जैन के शब्दों में "छिन्नमस्ता को उच्चवर्गीय संयुक्त परिवार के विषैले और दमघोटू वातावरण से निकालकर अपने व्यापार और पूँजी कमाने, बढ़ाने के बाद व्यक्तित्व के विकास या बौद्धिक और मानसिक विकास के लिए हर सम्भव साहस (दुरसाहस) और प्रयास करती विद्रोही स्त्री की आत्मकथा या आत्मविश्लेषण या आत्मसंघर्ष के रूप में ही देखा जा सकता है।"[165]

प्रभा खेतान के 'अपने-अपने चेहरे' के मिज़िस गोयलका और रीत्तू विद्रोही नारियाँ नहीं हैं लेकिन रमा अपने आत्मबल से यह दिखाती है कि नारी में अपार ऊर्जा है। वह मिस्टर गोयलका

के यहाँ रीत्तू को पढाने जाती है। परन्तु अपनी आन्तरिक इच्छाशक्ति, आत्मविश्वास और आत्मबल के आधार पर ऊँचाइयों के मुकुड को अपना सकती है। लेखिका के शब्दों में - "औरत बिना स्ववलंबी हुए स्वतंत्र नहीं हो सकती। यही एक सामाजिक सत्य बन गया है कि जो नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी है वह नारी शक्ति है, अपने परिवार की धुरी है तथा उसका शोषण 'नहीं' के बराबर है।"[166]

कृष्णा सोबती के 'दिलोदानिश' की महकबानो अपने आर्थिक अधिकारों के लिए संघर्ष करती है। जो वकील कृपानारायण की रखैल है। उनसे उसे दो सन्तानों भी हैं। लेकिन अपनी ज़िन्दगी के रास्ते से उसे अलग पद रखनेवाले वकील से महकबानो विद्रोह कर बैठती है। वकील साहब के हाथों से अपनी माँ के कीमती जेवर अपना लेने के बाद उसने अनुभव किया कि स्त्री को भी अपनी अस्मिता है, हक है, आत्मगौरव है और उसे अपने अधिकार के लिए सतत संघर्षरत होना चाहिए। "आज से पहले तो हम औरत ही नहीं थे। ओढ़नी थी अगियाँ थी और पाँव किसी को सौंप रखे थे।"[167] अपने अधिकारों के प्रति सजग और सतर्क रहनेवाली महकबानो नयी पढी के लिए प्रेरणापुँज है।

'सूरजमुखी अन्धेरे के' की रत्ती प्रियतम की मृत्यु और अपूर्ण बलात्कार से दोहरा आघात पाती है। परिणामतः समाज के ठेकेदारों ने जब-जब उसे छेड़ा, उसके स्त्रीत्व को चुनौती दी, उसने चंडी बनकर उसका सामना किया। वह पुरुषों से पुरुष बनकर टक्कर लेती है। वह नारी-जाति के मुँह पर थूकती है, उसके जीवन में रंजन, रोहित, भानुराव आदि विवाह प्रस्ताव लाते हैं, किन्तु वह सब को नकार देती है। रत्ती के अन्तस में जब भी कभी कोमल भावनाओं की कोपलें प्रस्फुटित होने लगतीं, खूनी धब्बे उन्हें कुचल देते।

राजनीतिक क्षेत्र में भी नारी सशक्तीकरण की अभिव्यक्ति दृष्टव्य है। 'इदन्नमम' की मन्दा राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने को तत्पर होती है। उसकी शोषण के विरुद्ध की आवाज़ की बुलन्दी हमारे कानों में अब तक गूँज रही है। वह गाँव के कल्याण हेतु डाक्टर की नियुक्ति को आवश्यक मानकर राजनेताओं पर दबाव डालती है। गाँववालों से चुनाव में मतदान न करने का निर्णय करवाता है। उसके इस निर्णय को जानकर नेता राजासाब उसकी हिम्मत को सराहता है - "कैसी जहरीली हँसी है। लड़की की। कमाल है गाँव-गाँव नेता हुए जा रहे हैं लोग। पुरुष जो

पुरुष इस लड़की की हिम्मत....। न कुछ उम्र में कैसी ऊँची-ऊँची बातें करती है।"[168] अन्ततः महाकाली का अवतार उस लड़की के प्रभाव से गाँव में डाक्टर की नियुक्ति होती है।

'चाक' की सारंगी जन हितार्थ चुनाव लडती है और सफल भी होती है। उपन्यास की कई नारियाँ सारंगी को सक्षम बनाने व उसके चुनाव को विजय प्रदान हेतु उसका साथ देती हैं। डॉ. मधुसन्धु के शब्दों में - "चाक की औरतें पुरुष समाज पर भारी पड रही हैं। कहीं देहताप के कारण, कहीं पुरुष नारी के लिए बने अलग-अलग मानदण्डों के कारण और कहीं अपने बौद्धिक विकास के कारण। ये औरतें उन गोरी मेमो से भी आगे हैं, जो रास-रंग, नाच-गाने का साथ तो देती थी। पर वायसराय या शासक कभी नहीं बनी। चाक की सारंग चुनाव जीतकर अपना अस्तित्व और विद्रोह मात्र सार्थक करने का संकल्प लिए है।"[169] श्रीधर को पूर्ण विश्वास है कि सारंग में योग्यता है, हिम्मत है, दृढ़ संकल्प शक्ति है। जब पति रंजीत उससे यह जानना चाहता है कि क्या वह चुनाव में प्रधान पद प्राप्त कर आदर्श रामराज्य की स्थापना करेगी? तब उसका जवाब है - "रामराज्य लेकर हम क्या करेंगे? सीता की कथा तो सुनी है। धरती में ही समा जाना है तो यह जद्दोजहज? अपने चलते कोई अन्याय न हो जाने की कीमत देकर इतनी सी बात, छोटा सा संकल्प करके निभाने की इच्छा है, बस।"[170] सारंग में एक सजग, सूक्ष्म नारी समाहित है।

सूर्यबाला के 'सुबह के इन्तज़ार' की नायिका श्यामा भी असाधारण आत्मबल की नारी है। जीवनपर्यन्त वह संघर्ष कर अपना व अपने भाई का जीवन कायम रखती है। जानलेवा बीमारी से ग्रस्त होने पर भी वह दूसरों को इसका पता नहीं चलने देती है। असाधारण स्त्री श्यामा जो अपनों द्वारा ठुकराई गई, गरीबी एवं बदनामी के गर्त में पड़कर भी आत्मबल के द्वारा ऊपर उठी और अपने परिवार को जीवित रख सकी। भाई को डॉक्टर बना पाई।

'नदी और सीपियाँ' की स्वर्णा विवाहित होकर भी पति इसरार के प्रेम से वंचिता है। इसरार द्वारा की गई अमानुषिकता के लिए स्वर्णा स्वयं को दण्डित किए जाने के लिए तैयार नहीं। वह अपनी सखी शीला को पत्र लिखती है। इस पत्र में वह स्वयं को पुष्पा कहकर स्थिति स्पष्ट करती है - "तुम पुष्पा को क्या कहोगी? निश्चय ही परंपरागत अर्थों में वह शायद भ्रष्ट हो गई। लेकिन जो भँवर बिना उसके किसी दोष के उसे घेर कर गज़र गया उस स्थिति में पड़ी कोई लड़की उसके अतिरिक्त और क्या कर सकती थी? अव्वल तो पुष्पा का अपराध मुझे कोई अपराध नहीं लगता और यदि वह अपराध भी है तो घटित को अघटित मानकर, ईमान के आधार

पर नए सिरे से क्या वह नई ज़िन्दगी शुरु नहीं कर सकती।"[171] अपने साथ सभी अनचाहे घटित को अघटित मानकर वह फिर नए सिरे से जीवन जीने की पक्षपाती दिखाई देती है।

श्रीमती शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'खामोश होते सवाल' उपन्यास की अनुराधा केवल एक गृहिणी नहीं है वरन् स्त्री के उस वर्ग की प्रतिनिधि है जो पढ़-लिखकर अपने व्यक्तित्व को पृथकरूप से स्थापित करती है तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाती है। शराबी पति से ऊबकर वह अपनी शिक्षा एवं संस्कार के बल पर अपनी परिस्थिति से लड़ती है और आर्थिक निर्भरता के लिए व्यवसाय का मार्ग चुन लेती है। विद्रोही होकर ही सफल जीवन बिताती है। यहाँ स्त्री की क्षमता पर दृष्टि रखकर डॉ. रेणुका मोरे लिखती है "शिक्षा ने नारी अस्मिता को, चेतना को जगाया है। अपने अधिकार एवं शक्ति से वो भलीभाँति परिचित हो चुकी है। आज शिक्षा ने उसे इतना समर्थशाली बनाया है कि वह न केवल स्वयं के लिए बल्कि समग्र स्त्री जाति के लिए राह दिखा सकती है।"[172] सशक्त और सक्षम बनकर जीवन नौका को आगे बढ़ाने व अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा उसे उच्चशिक्षा ने ही दी है।

नासिरा शर्मा के 'ठीकरे की मँगनी' की महरूख गाँव के लोगों से कहती है कि "अपने अधिकारों को समझो और दूसरों को बताओ - "बिना दिमाग के हथियार बन्द किए कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।"[173] इसप्रकार वह गाँव के लोगों को भी सामाजिक आन्दोलन के लिए प्रेरित करती है।

'फ्रीलान्सर' में शहना चौधरी 'ऑफ्टरनून' समाचारपत्र में नौकरी कर रही थी। वह पुरुषशोषण के विरुद्ध हमेशा खडी रही थी। उसने स्वीकार किया है - "समर्पित रहकर जीवन बिता देना स्त्री की विवशता की शर्त रही हो कभी, आज हालात बदल गये हैं, जिसे प्यार किया जाए, उसके प्रति समर्पित हुआ जाए, उसके गुण-अवगुण उसकी क्षमता अपने से कुछ तो ज़्यादा हो। बराबर या अपने से कम के साथ समझौता हो सकता है, समर्पण की सौदा नहीं।"[174]

'छत पर अपर्णा' उपन्यास में अपर्णा पूँजीपति एवं उद्योगशील परिवार की लड़की है। माता-पिता की निरंकुश कठोरता के कारण वह विद्रोह के रूप में सिद्धार्थ नामक युवक से अविवाहित जीवन-यापन करने का निर्णय लेती है और सारे दबावों के बीच भी अपना निर्णय नहीं बदलाती है। परिवार से तिरस्कृत होने का बोध नारी को विद्रोही बना देता है। 'अपनी-अपनी यात्रा'

में सुरेखा के मन में एक इच्छा पलने लगती है कि वह "किसी तरह पापा और बाबू जी के रास्ते से छूट जाए और अपने भीतर के विश्वास को जिलाकर खड़ा कर ले कि उसे अपने जीवन में कुछ पाना है, कुछ बनाना है।"[175]

'नीलोफर' की नीलिमा की कमाई से माँ-बेटे एशोराम की ज़िन्दगी बिताते हैं। बेटा भी माँ के इशारे पर नाचता है और पत्नी का सहयोग नहीं देता। नीलिमा अन्त में अपना विद्रोहीरूप दर्शाकर पति से कहती है, "मैं वापस जा रही हूँ अहमद। मुझसे नमाज़ पढ़ने की बात नहीं निभेगी।"[176] नीलिमा की सास ने अपनी बहु को बुरका पहनने एवं नामाज़ पढ़ने के लिए हमेशा मज़बूर किया था। नीलम जाति एवं धर्म के भेद को पारने का कार्य करती है। वह स्वयं हिन्दू होकर मुस्लिम युवक अहमद से शादी करती है। परन्तु जब उसे पति के देशद्रोही कारनामों का पता चलता है तब वह उसके प्रति विद्रोह करती है। पतिधर्म से देशधर्म को श्रेष्ठ मानकर चलनेवाले अपने देशद्रोही पति का अन्त अपने ही हाथों से करती है। नीलम देश की रक्षा के लिए विद्रोही बन जाती है।

संदर्भ

1. रतनकुमारी वर्मा - महिला साहित्यकारों का नारी चित्रण - पृ. 1
2. राजेन्द्र यादव - आदमी की निगाह में औरत - पृ. 28
3. श्रीमती बसन्ती पन्त - हिन्दी उपन्यास : रचना विधान एवं युगबोध - पृ. 95
4. मैत्रेयी पुष्पा - कस्तूरी कुंडल बसै - पृ. 63
5. वही - पृ. 23
6. नासिरा शर्मा - शाल्मली - पृ. 127
7. वही - पृ. 166
8. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता - पृ. 86
9. वही - पृ. 86
10. उषा कीर्तिराणा - प्रभा खेतान की औपन्यासिक संसार - पृ. 143
11. कृष्णा अग्निहोत्री - बात एक औरत की - पृ. 1
12. कृष्णा अग्निहोत्री - बात एक औरत की, भूमिका - पृ. 1
13. कुमारिकाएँ - पृ. 135

14. डॉ. मधुसन्धु - महिला उपन्यासकार - पृ. 115
15. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 339
16. मालती जोशी - पाषाणयुग - पृ. 50
17. चित्रा मुद्गल - एक ज़मीन अपनी - पृ. 23
18. मेहरुन्निसा परवेज़ - आँखों की दहलीज - पृ. 77
19. नासिरा शर्मा - ठीकरे की मँगनी - पृ. 135
20. वही - पृ. 155
21. वही - पृ. 148
22. मालती जोशी - सहचारिणी - पृ. 17-18
23. डॉ. शशि जेकब - महिला उपन्यासकारों में वैचारिकता - पृ. 239
24. दीप्ती खण्डेलवाल - कोहरे - पृ. 68
25. कृष्णा सोबती - समयसरगम - पृ. 102
26. मेहरुन्निसा परवेज़ - कोरजा - पृ. 149
27. कुसुम अंसल - एक ओर पंचवटी - पृ. 49
28. वही - पृ. 49
29. शशिप्रभा शास्त्री - परछाइयों के पीछे - पृ. 57
30. वही - पृ. 47
31. डॉ. मधुसन्धु - महिला उपन्यासकार - पृ. 107
32. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 106
33. निरुपमा सेवती - दहकन के पार - पृ. 4
34. कृष्णा अग्निहोत्री - अभिषेक - पृ. 103
35. मालती जोशी - गोपनीय - पृ. 31
36. राजी सेठ - निष्कवच - पृ. 91
37. कृष्णा सोबती - दिलोदानिश - पृ. 83
38. राजी सेठ - निष्कवच - पृ. 73
39. दीप्ती खण्डेलवाल - प्रतिध्वनियाँ - पृ. 79
40. नीलिमा सिंह - स्वीकार है मुझे - पृ. 95
41. अनामिका - अवान्तर कथा - पृ. 16

42. इन्द्रनाथ मदान - आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य - पृ. 94
43. कृष्णा सोबती - समयसरगम - पृ. 5
44. चित्रा मुद्गल - एक ज़मीन अपनी - पृ. 205
45. ममता कालिया - लड़कियाँ - पृ. 31
46. शशिप्रभा शास्त्री - उम्र एक मलियारे - पृ. 11
47. राजीसेठ - नितकवच - पृ. 184
48. कुसुम अंसल - अपनी-अपनी यात्रा - पृ. 65
49. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता - पृ. 129
50. सूर्यबाला - मेरे सन्धिपत्र - पृ. 110-111
51. नासिरा शर्मा - ठीकरे की माँगनी - पृ. 147
52. राजीसेठ - तत्सम - पृ. 14-15
53. शुभावर्मा - फ्रीलान्सर - पृ. 74
54. शशिप्रभा शास्त्री - कर्करेखा - पृ. 85
55. कृष्णा अग्निहोत्री - कुमारिकाएँ - पृ. 94
56. डॉ. सीतामिश्र - साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यास : पात्रों का परिवर्तित मूल्यबोध - पृ. 48
57. निरुपमासेवती - बँटता हुआ आदमी - पृ. 161-62
58. सिमोन द बोउवार - स्त्री उपेक्षिता - पृ. 175
59. हरिकृष्णराय - खामोश कबीले की मुखर चेतना, वागर्थ-2000, जून - पृ. 105
60. प्रभा खेतान - पीली आँधी - पृ. 272
61. शशिकला त्रिपाठी - सामन्ती व्यवस्था के खिलाफ कदम उठती औरत पदचाप - हंस अक्तूबर 67
62. मेहरुन्निसा परवेज़ - कोरजा - पृ. 91
63. शशिप्रभा शास्त्री - सीढ़ियाँ - पृ. 84
64. मंजुल भगत - फ्रीलान्सर - पृ. 125
65. कृष्णा अग्निहोत्री - अभिषेक - पृ. 47
66. मालती जोशी - निष्कासन - पृ. 104
67. मालती जोशी - निष्कासन - पृ. 107
68. राजीसेठ - तत्सम - पृ. 85

69. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 21
70. कृष्णासोबती - दिलोदानिश - पृ. 154
71. मृणाल पाण्डे - रास्तों पर फटकते हुए - पृ. 68
72. मृणालपाण्डे - रास्तों पर भटकते हुए - पृ. 130
73. सुधीर पचौरी - उत्तर यथार्थवाद - पृ. 284
74. कुसुम अंसल - उस तक - पृ. 40
75. रजनी पनिकर - दो लड़कियाँ - पृ. 90
76. ब्रह्मस्वरूप शर्मा - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ. 104
77. कृष्णा अग्निहोत्री - कुमारिकाएँ - पृ. 102
78. चित्रा मुद्गल - आवाँ - पृ. 353
79. चित्रा मुद्गल - एक ज़मीन अपनी - पृ. 30-31
80. वही - पृ. 41
81. वही - पृ. 120
82. वही - पृ. 245
83. शुभा वर्मा - फ्रीलान्सर - पृ. 121
84. मधुभादडी - कालचक्र - पृ. 122
85. आवां - पृ. 151
86. आवां - पृ. 148
87. मालती जोशी - रागविराग - पृ. 50
88. नासिरा शर्मा - शाल्मली - पृ. 44
89. शशिप्रभा शास्त्री - परछाइयों के पीछे - पृ. 156
90. रजनी पनिकर - मोम के मोती - पृ. 175
91. वही - पृ. 31
92. रजनी पनिकर - दो लड़कियाँ - पृ. 4
93. कृष्णा अग्निहोत्री - नीलोफर - पृ. 173
94. वही - पृ. 183
95. शशिप्रभा शास्त्री - कर्करेखा - पृ. 13

96. चन्द्रकान्ता - एलान गली ज़िन्दा है - पृ. 175
97. निरुपमा सेवती - बँटता हुआ आदमी - पृ. 87
98. निरुपमा सेवती - पतझड की आवाज़ें - पृ. 32
99. वही - पृ. 53
100. शशिप्रभा शास्त्री - नावें - पृ. 14
101. शशिप्रभाशास्त्री - नावें - पृ. 15
102. ममता कालिया - बेघर - पृ. 102
103. सम्मिहर्षिता - यातनाशिबिर - पृ. 197
104. राजेन्द्र यादव - जवाब दो विक्रमादित्य - पृ. 258
105. मृणाल पाण्डे - रास्तों पर फटकते हुए - पृ. 105
106. कृष्णा अग्निहोत्री - कुमारिकाएँ - पृ. 52
107. डॉ. उषा यादव - महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना - पृ. 95
108. मंजुल भगत - अनारो - पृ. 53
109. प्रभा खेतान - वागर्थ - सितंबर 2002 - पृ. 37
110. मंजुलभगत - अनारो - पृ. 59
111. सरिता कुमार - महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप - पृ. 41
111. कुसुम अंसल - उसकी पंचवटी - पृ. 75
113. प्रतिमावर्मा - उन शाखों पर - पृ. 69
114. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 121
115. मंजुल भगत - तिरछी बौछार - पृ. 88
116. मेहरुन्निसा परवेज़ - अकेलापलाश - पृ. 44
117. मालती जोशी - मन न भये दस-बीस - पृ. 36
118. डॉ. रामदरश मिश्र - हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा - पृ. 98
119. अलका सरावगी - शेष कादंबरी - पृ. 78
120. अरविन्द जैन - औरत अस्तित्व और अस्मिता (आत्महत्या के विरुद्ध - जीवन से मुठभेड) - पृ. 93
121. डॉ. काश्मीरीलाल - महिला कथाकार - समाजशास्त्रीय एवं भाषिक संकल्पना - पृ. 150-151
122. सूर्यबाला - सुबह के इन्तज़ार - पृ. 162

123. चित्रा मुद्गल - आवाँ - पृ. 111
124. शशिप्रभा शास्त्री - मीनारें - पृ. 30-32
125. प्रभा खेतान - अन्या से - अनन्या तक - पृ. 45
126. जगदीश्वर चतुर्वेदी - स्त्रीवादी साहित्य विमर्श - पृ. 118
127. चित्रा मुद्गल - आवाँ - पृ. 110
128. वही - पृ. 155
129. वही - पृ. 157
130. वही - पृ. 278
131. निरुपमा सेवती - पतझड की आवाज़ - पृ. 97
132. डॉ. उषा यादव - महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना - पृ. 98
133. मणिका मोहिनी - पारु ने कहा था - पृ. 40
134. डॉ. दिनेश द्विवेदी - चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ - पृ. 11
135. राजी सेठ - निष्कवच - पृ. 53
136. वही - पृ. 55
137. डॉ. मधुसन्धु - महिला उपन्यासकार - पृ. 91
138. नासिरा शर्मा - शाल्मली - पृ. 146
139. वही - पृ. 146
140. डॉ. मधुसन्धु - महिला उपन्यासकार - पृ. 44
141. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता - पृ. 53
142. डॉ. मधुसन्धु - महिला उपन्यासकार - पृ. 50
143. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता - पृ. 97
144. वही - पृ. 167
145. डॉ. हरिकृष्णराय - खामोश कबीले की मुखर चेतना, वागर्थ-2002 जून - पृ. 108
146. गोपालदास - नारी जीवन - पृ. 126
147. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 142
148. पद्मा सचदेव - अब न तो बनेगी देहरी - पृ. 17
149. चित्रा मुद्गल - एक ज़मीन अपनी - पृ. 183
150. वही - पृ. 112

151. वही - पृ. 112
152. वही - पृ. 114
153. गिरिराज किशोर - सडे आब्जर्वर 2 जून - पृ. 14
154. मृदुलागर्ग - कठगुलाब - पृ. 131
155. वही - पृ. 62
156. वही - पृ. 68
157. वही - पृ. 67
158. मृदुलागर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 120
159. डॉ. हरवंशकौर - महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी - पृ. 85
160. डॉ. निर्मला जैन - कथा प्रसंग यथा प्रसंग - पृ. 54
161. चन्द्रकान्ता - अपने-अपने कोणार्क - पृ. 182
162. कृष्णा सोबती - हरदिन इतिहास - पृ. 95
163. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता - पृ. 10-11
164. वही - पृ. 87
165. अरविन्द जैन - औरत अस्तित्व और अस्मिता - पृ. 104
166. प्रभा खेतान - अपने-अपने चेहरे - पृ. 57
167. कृष्णा सोबती - दिलो दानिश - पृ. 208
168. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम - पृ. 308
169. डॉ. मधुसन्धु - महिला उपन्यासकार - पृ. 119
170. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 415
171. शानो - नदी और सीपियाँ - पृ. 79
172. डॉ. रेणुका मोरे - नारी विमर्श की नयी दिशाएँ - पृ. 61
173. नासिरा शर्मा - ठीकरे की मँगनी - पृ. 170
174. शुभा वर्मा - फ्रीलान्सर - पृ. 202
175. कुसुम अंसल - अपनी-अपनी यात्रा - पृ. 96
176. कृष्णा अग्निहोत्री - नीलोफर - पृ. 172